शैवाल

रचयिता

स्वर्गीय श्री रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' एम० ए०

सं० २००४

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

प्रकाशकीय

सम्मेलन के हरिद्वार अधिवेशन के अवसर पर महन्त शान्तानन्द-नाथ, बाबू पन्नालाल जी भल्ला एवं महन्त घनश्यामगिरि जी द्वारा प्रदत्त रूपयों से सभापति श्री माखनलाल चतुर्वेदी का तुलादान हुआ था, और यह निश्चय हुआ था कि इन रुपयों की निधि से सम्मेलन द्वारा बीसवीं शताब्दी के स्वर्गीय साहित्यिकों की अप्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन हो। अभी तक प्रयत्नशील होने पर भी अनेक कारणों से हम 'निधि' का कार्य अग्रसर करने में असमर्थ रहे थे, पर हर्ष का विषय है कि स्व० रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' एम० ए० का कविता-संग्रह 'शैवाल' इस निधि के प्रथम 'रत्न' के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इस निधि के सभापति माननीय प० माखनलाल जी चतुर्वेदी ने कृपा पूर्वक भूमिका लिखकर इस पुस्तक का महत्व बढा दियहै- । श्री कृष्णकुमार जी मिश्र के सौजन्य से हमें कवि का चित्र, हस्ताक्षर और हस्तलिखित पद्य आदि आवश्यक सामग्रियाँ मिल सकी हैं, एतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं। आशा है स्व० कविवर 'हृदय' का यह ग्रथ-रत्न अपनी आभा से हिन्दी-जगत को आलोकित करेगा।

सौर १७ कार्तिक, २००४

साहित्य मंत्री

रमाशङ्कर शुक्ल 'हृदय'

हस्तलिपि

गा निशीथ में —

गा निशीथ में विराग! एक करुण रागिनी!

मधुर स्वप्न जग न आज
दे जगा सुहाग-साज।
पलक-द्वार ना करे
प्रदीप्त मूक-प्रेम-राज।

फूंक-फूँक एक हूक, सिहर उठे मानिनी!

विकल व्यथित हृदय-भार
वितरित कर द्वार-द्वार
सुप्त स्मृति का विषाद
भर ले स्वर में उदार!

तारों में पुलक प्राण पुलकित कर यामिनी!

रमाशङ्कर शुक्ल 'हृदय'

सूची

दो शब्द

सन् १९३० का मई महीना। २९ एप्रिल की रात। राजनीति में काम करते हुए कुछ आदमी कैदी हो गये। पण्डित रविशंकर शुक्ल, बाबू गोविन्ददास, पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र और मैं भी।

छिन्दवाड़ा से इस राजद्रोह के मुकद्दमे के लिये विशेष रूप से नियुक्त आई० सी० एस० श्री लिली की अदालत है। अदालत यानी जेल का एक कमरा। पहरा है, कैदी हैं, सींखचे हैं, दीवारें हैं, मुकद्दमा सुनने के लिये मुश्किल से घुस पाये लोगों का छोटा सा समूह भी है।

दाहिनी ओर, कभी उदास और महत्व का बनने का रूप धरने से 'न्याय देवता' (?) की तरफ और कभी ब्रिटिश न्याय-दान के निश्चित परिणाम को पहिले ही से जानने वाले कैदियों की तरफ देखता हुआ मुसकुरा-मुसकुरा कर मुकद्दमे के नोट ले रहा है, यह कौन है? देखने वालों में, राजनीतिक वातावरण से प्रभावित आँखें यदि कैदियों की तरफ, उनकी काना-फूँसियों की तरफ आकृष्ट थीं, तो फलों में स्वाद का, फूलों में सुगन्ध का और प्राप्ति में लाभ का मूल्य आकने वाली, चिन्तना की गिनी चुनी आखें तरुण रिपोर्टर की तरफ आकृष्ट होती थीं।

कैसा मस्ताना है यह आदमी। स्वय गिरफ़्तार नहीं है, किन्तु कैदियों से अधिक उल्लसित है, इस पर न वादी के नाते न प्रतिवादी के नाते, न न्यायाधीश के नाते, न ही साक्षी के नाते, इस अभियोग का कोई उत्तरदायित्व है, किन्तु यह अपने नोटों के लिखने मे कितना व्यस्त है? मैंने पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र से पूँछा—यह कौन है?'
—'ये हैं प० रमाशङ्कर शुक्ल, लोकमत के मेरे सहायक, क्या आपने इन्हें कभी नहीं देखा? इनकी कलम मे प्रतिभा का चमत्कार है।'

जेल से छूटकर एक दिन मैंने उज्जैन में श्री अम्बाप्रताप जी

तिवारी के यहा देखा—जेल का वही मुसकुराता हुआ चेहरा !

'आप यहा कहा ?'

"जी, लोकमत वन्द होने के वाद मैं यहा माधव कालेज में प्रोफेसर होकर आ गया हूँ।"

मैंने जाना, रमाशकर कवि हैं, जीवन, और विन्ध्य-सातपुड़ा और राजनीति के उतार चढाव के बाद प्रभु का आशीर्वाद मिल गया। उस दिन मैंने पहिली बार जाना कि 'हृदय' यह है। उनका काव्य सुनकर।

हृदय से मैं निकट से परिचित कभी न हो पाया। जो वर्तमान मे जीवन धारण कर छुपकर रहने में सदा भूतकाल वना रहे ऐसे व्यक्ति को पकड़ने के लिये जितना वचपन, जितना निर्मल अपनत्व चाहिये वह अवसर 'हृदय' के छुपे रहने वाले स्वभाव के कारण मिल ही न पाया। उज्जैन और खण्डवा की दूरी बनारस और टोकियो की सी दूरी हो गई। 'हृदय' के हृदयत्व से परिचय कराया हृदय के काव्य ने और उस काव्य की प्रेरणा वनकर आये हुए चिरजीवी प्रभाग ने। 'शैवाल' सन् १९३७ मे प्रकाशित होने को थी। और मैं ही उस पर कुछ लिखने को था। किन्तु प्रेस कापी वनकर 'शैवाल' रखा रहा और इसके शाश्वत गायक की झिझक शैवाल को उस समय प्रकाशन का अवसर न दे सकी।

परिचय की कलम प्राणों की साँस से लिखती है। अपनी स्मृतियों को कोमल कवि की एकान्त आराधिका ने जिनका नाम विन्ध्यवासिनी देवी है यों लिखा है—

"अब सोचती हूँ, स्वप्न में सौभाग्य और जागरण में वैधव्य कैसा विचित्र विधान है ! पहले मैं इस विचित्र विधान से इतना डरती थी जितना कि मृत्यु से भी नही। 'उनकी' मृत्यु से इतना डरती थी कि किसी की विधवा वहिन के शान्त स्वरूप को देखकर काप उठती थी। भगवान से मनाया करती थी कि मेरा स्वप्न भग न हो। उन चरणों में मेरा अन्त हो जाय यही कामना थी। इस अन्तिम सुख को छोड़ तो मैंने सभी पा लिया था।

"अब मुझे अच्छी तरह समझ में आ गया कि मेरे देव, सफल कवि, क्यों कहा करते थे कि स्मृतिधन सबसे बड़ा धन है। वह मानव जीवन की ऐसी निधि है जो स्थायी होती है। और जिसे कोई बाहरी शक्ति छीन नहीं सकती।"

'याद' की याद दिलानी रोकर भी, वैधव्य के संकेत मात्र से भयभीत होने वाले कोमलतर हृदय पर जो बीती होगी, जो बीत रही होगी वे अनुभूतियाँ जो सान्निध्य व्यक्त करती हैं, उनके सत्य के वैभव का एक कण भी साहित्यिकता में कहाँ हो सकता है ?

उनके आत्म-जीवन का उज्ज्वलतर अंतरंग, काव्य, संगोपन, मार्ग दर्शन और स्नेह में जिसे प्राप्त था उसकी कलम से निकला—

"जब कभी हर दिन क्षीणतर हो रही अपनी दुर्बल साँसों के बीच वे बोल उठते थे तो ऐसा आभास होता मानो उन्होंने अखिल सृष्टि की पुष्पमयी पीडा का कण्ठ उधार ले लिया हो।

"उनके व्यक्ति की मोहकता, कई जगह उनकी कविता से अधिक आकर्षक हो गई थी।"

"मधुर एकान्त के उनके मौन में ही घटों, मैंने साँसों की खट्खट् को सुना है, समझा है।

"वह सारा वातावरण, मेरे मन प्राण में भिद गया है।"

प्रभाग की इन पंक्तियों में हृदय बहुत निकट से दीखने लगते हैं और उस समय लिखने की इच्छा को अनुराग की अपेक्षा विराग प्यारा मालूम होने लगता है। किन्तु कला और कलम का यह दुर्भाग्य रहा है कि उल्लास यदि आँखों पर आता है तो उसासें उसी स्थान पर अनन्त गुने वेग से आये बिना नहीं रहतीं। कलम तो मानो लिखने वाले का कलेजा है, जो कुछ नीला पीला उसे सूझे वह काला करके कागज पर रख देने को लाचार हो जाता है।

जिन दिनों 'करुणा कण' आई, छपकर, बेनीपुरी मेरे पास दौड़े। चट्टान से निश्चय के आदमी की आँखों पर हराभरा विन्ध्या झूल उठा।

वे पढ़ चले, मैं सुन चला।

'शैवाल' पढकर यह विचार आये बिना नहीं रहता कि साहित्य कीजगदीश्वरी के मन्दिर में अपना अत्युच्च प्रसाद चढाते समय भी कवि, देवता की उच्चता वर्णन करने की अपेक्षा अपने प्रसाद को नगण्यतर कहने के लिये कितना सजग है। यदि हृदय की ये पक्तियाँ शैवाल हैं, तो लिखास के खेतों मे जो मनों घास हिन्दी साहित्य की ज़मीन पर ही नही आकाश तक पर ऊगा हुआ है और जिसने अपने लिये अच्छे से अच्छे नाम चुन रखे हैं उसे क्या कहा जाय! भक्त की शोभा उसकी पूजा में तो है किन्तु प्रभु के समर्पण में सहे हुए कष्टों और उपस्थित की हुई पूजा के सर्वथा भूल जाने में ही नहीं, किन्तु स्नेह की मस्ती के बीच उन कष्टों के याद तक न रहने में जो आनन्द है उसी की कलम सौभाग्य शीला है। 'हृदय' की पंक्तियाँ पढते हुए, बार बार तरलाई के संचय का यह स्वभाव याद आये बिना नहीं रहता कि जितना आगे बढो, उतना गहरा। इस छुपे रहने वाले कवि की पक्तियाँ कहती हैं कि रचना का बोझ नहीं, मुझे अपनी सीमा याद रहने दो। मेरे व्यञ्जनों में ऐसा न हो कि मैं किसी और का व्यञ्जन अपना कह कर परोस दूँ। मेरे नैवेद्य में कही ऐसी बात न हो कि किसी पर चढाकर मैं फिर उसी को अपने अभिमत पर चढा रहा होऊँ। इसलिये इस काव्य में ऊबड़ खाबड़ शब्द योजना नहीं मिलेगी जहाँ शब्दों को बाधने पर सौन्दर्य और सौन्दर्य बाधने पर शब्द गायब हो-हो जाते हों।

काव्य का स्वभाव ही इतना कोमल है कि जब हम रसों पर शस्त्र-क्रिया करके-काले, पीले-पीले, श्वेत-श्वेत कह कर रगों की अनुराग भरी दुनिया को अलग अलग करके बाधने लगते हैं तब हमारी इस नाके बन्दी में से रस ही विलीन नहीं हो जाता, बेचारा अर्थ तक भाग खड़ा होता है। इसीलिये अन्तर के मधुरतम के प्रति ईमानदार रहने वाला कवि विश्व के बाजार की दर देख-देख कर अपने माधुर्य का मैदान नहीं बदलने पाता, क्योंकि जिसे लम्बी सी कहानी अदृव्य बनाकर निराश हो जाती है उसे मदभरी दो पक्तियाँ यों उतार कर रख देती हैं—

प्राणों के श्वासों में भरकर
श्वासों के स्वर में उतार कर
मेरी करुणा दूर देश में
चली गई री, क्षितिज पार कर

और भी—

तुम गाओ, मैं गूंजूं होकर
मधुर तुम्हारे स्वर का सरगम

रसों, रगों और उमगों भरी रचना पृथ्वी के एक ही जीवधारी से सधी—मनुष्य से। मानों चित्रों में, मूर्तियों में, गायन में, नृत्य में, काव्य में, साहित्य में, शोध में, विनोद में, कुछ छू जाना सा है कि सिहर उठा और कोई पीछे खड़ा है कि जिसने धकेल कर कलम पर ला दिया। इस तरह अन्तर से आचल में आने वाली और फिर हृदय के साकेत के आगन में खेलने वाली सूझों के आनन्द की लाचारियों के सुकोमल आविष्कार इसीलिये कहने, सहने और रम रहने की वस्तु बन गये। इसीलिये तो जब-जब कलम, कूची या छेनी लेकर जब जब अपने ही अगों के टुकड़े तोड़कर कलाइया घूमी है, सूझें भूमी हैं तब तब अन्तर ही नहीं, जमीन निहाल हो उठी है, जीभें नहीं, कागज़ बोल उठे हैं, जिज्ञासा नहीं, दीवारें ब्रह्माण्ड बन उठी हैं और उसासों से नहीं, पत्थरों पर चढ़कर सूझों ने अनन्त इतिहास से आज तक विश्व की कोमलता को चुनौती दी है।

रचनाकार है कि उसे कौन-कौन सी परिस्थिति गड़ नहीं उठी? और जगत के किस कोने पर उसकी अगुलियाँ पहुँच नहीं उठीं? कौन-कौन से व्यक्ति दूख नहीं उठे? और किन कोटि-कोटि की भावधारा उसकी काली स्याही में हिलोरें नहीं मारने लगीं। यदि एक आदमी की आप तसवीर बनायें जिसमें रोटियों का एक बड़ा सा पहाड़ बनायें और उसके शिखर पर उस आदमी को बैठा दें तो चाहे रोटियों के उस बड़े समूह को देखकर वह स्वय बेहोश हो जाय किन्तु सत्य की गिनती यह है कि वह जीवन भर में उन सब को अकेला खा गया। कितनी ही बार मनुष्य जिसे कर ले जाता है उसे सुनना तक

वर्दाश्त नहीं करता। चलिये, अब एक कवि की तसवीर बनायें। रचना है कि वह साख्य की सुगन्ध आई, वह दर्शन झाक उठा, 'कमला' के इतिहास ने कहा कि मैं हूँ। पूजा भाव भरी विन्ध्या जी कहती होंगी कि रचना में उनके आवेग प्रतिबिम्बित थे। और रचना के सहस्र-सहस्र पाठक कहेंगे कि कवि ने उनके कोटि कोटि कोमल क्षणों को छीन कर कलम बन्द कर दिया है। और कहे भी क्यों न—

नील घोड़ा रा धो असवार, वता कव चमकेगी तलवार।

ऐसी पक्तियाँ जो लेखक लिख जाता है; किन्तु ऊपर की कहानी की रोटियों की तरह रचनाकार की कोटि कोटि मनोभावनाओं को उसकी रचनाओं के रूप में एकत्रित करके देखें, तो लगे कि अनन्त-विश्व की मूर्ति-निर्माण करने वाला शिल्पी, यथार्थ में अपनी ही मूर्ति निर्माण करने में सफल हुआ है। उसकी रचना मानों उसके ही अन्तर के तरंगायमान देश का लेखा जोखा है। कोटि कोटि समष्टियों का सामञ्जस्य उस कोमल देश के विधाता की एक अपनी सास है।

सूझ का यह गर्व तो शोभता ही नहीं कि प्रशंसा में या आलोचना में हम किसी को अकेला कह कर फेंक दें। श्रावण आया और वेटियों को श्रवण की याद आ गई। गेरू का लाल रग बना। दरवाजों पर सफेद पृष्ठ भूमि पर कावड़ काधे पर रक्खे अपने अन्धे मा वाप को बैठाये यात्रा करते हुए श्रवण के चित्र वन गये। और वधुओं ने अपने तरुण कर-पल्लव से श्रवण के मुँह पर घी शक्कर लगाकर उसकी पूजा कर दी। कवि, नारी पर यह इलज़ाम क्यों रखे, वह क्यों ऐसी ही वात करे कि विषय-सुख की लगातार खोज का नाम ही नारी है? क्या श्रवण की तसवीर वनाने मे नारी मे श्रवण जैसा वेटा पाने की इच्छा छुपी हुई नहीं है? कला-यात्रा के इस दर्शन में कवि क्यों भूले कि श्रवण के चित्र की वेघड़ी रेखाओं से लगा कर अजन्ता और एलोरा तक आर्यों की कलम का जो विश्व चित्रित है उसकी रचना का वैषम्य चाहे जो हो किन्तु कला की एकतानता का और इतिहास की आराधनात्मक सृजनशीलता का उनके वीच का डोरा एक ही है। इसीलिये रचना का गायक उस अनन्त काल का सन्देश-वाहक है

जिसमें लगातार सर्जक श्रम करते और समर्पित होते चले आ रहे हैं, और जिसके हर चढाव, हर उतार, और हर घुमाव का नाम एक नया कलाकार हुआ करता है।

सत्य तो सत्य है, माना। किन्तु वह चाहे जितना रुचि पर चढकर या प्रेरणा पर उतर कर आया हो, विष भरे या स्नेह सने अभिमत को अगुलियों पर आसानी से उतार लाने के लिये, जीवन और श्रम में से बार बार कला को निखारना होगा। गीता की वाणी में इसे 'अभ्यास' कहा है। लिखने में आग्रह है, साहस है, आकर्षण का जादू है, किन्तु निखरी हुई कला की तीव्रता इतनी तीक्ष्ण हो कि वह अपने सहस्र सदस्र 'बार बार' को सदैव नया 'एक बार' मानने की मानिनी हो। 'हृदय' की कला में अनुराग की यह दौड़ इतनी स्वाभाविक हो उठी है कि मानों अभिव्यक्ति की अनन्त प्रतीक्षा में शब्द पहिले ही से सूझ के हवाई अड्डे पर यात्री बने खड़े रहते हैं :—

अब कैसी मधु की बातें जब,
सब समेट बैठी पाखें ये ?
क्षण भर यही देखना कोई
क्या कर लाई थीं आखें ये।

अपनी आशाओं की मूर्च्छना के ये क्षण, कितने मीठे, कितने कटु कितने सच्चे हैं ? इनकी विशालता है कि दर्शन का निगूढ तत्व कलाकार शिल्पी की शिथिल होती साँसों के साथ स्वाभाविकता से बहुत थोड़े में उतर आया है। कहने वाले की आह भरी वाणी हो और सुनने वाले के कान न हो, कैसा निष्ठुर सत्य :—

मुझे कहा अधिकार मिल सका
जो कह लेता दरद-कहानी।
तुम्हें कसक भी मिली कहा वह
जो भरती आखों में पानी।

विचार, राग, अनुराग, आदर्श, कितने अच्छे अच्छे नाम हैं। जितने भी ये अनोखे, अनहोने, अटल और अनिवार्य होते हैं, उतने जोर से ये अपने अवतरण का माध्यम ढूंढने कलम, कंठ या कृति

शीलता की ओर दौड़ उठते हैं। उस समय कोई शाश्वत वाणी में कह उठता है :—

धूल भरा शृंगार धूल भी
आखिर क्यों न संभाल सकी।
फूट पड़ी क्यों आह,
पत्थरों से क्यों हाहाकार हुआ।

और भी—

प्रेम हंस रहा है, ना जाने
किसका विछुडा प्यार पड़ा
पीडा रो आई, ना जाने
किस दुनिया का भार पड़ा
हूक हूकती है ना जाने
कौन प्राण देकर आया
द्रोह खीझ आया, ना जाने
किसके सिर अविचार पड़ा।

इन सरल-सजल पंक्तियों में जो कराह है, जो निर्मल पुकार है, युगों के उतार-चढ़ावों में उसे पुराना नहीं बनाया जा सकता।

काव्य और साहित्य हैं तो कला ही, किन्तु इनकी कुछ लाचारियाँ हैं। कला में चित्र और मूर्ति अनुवाद की मोहताज नहीं। देश काल से परे ये जिस ओर बढ़ीं, सूझने और रीझने वाले ढूँढ लिये। नृत्य और संगीत देशों की सीमा लाघकर पढ़े जाने की क्षमता तो नहीं रखते, किन्तु जहाँ तक एक सभ्यता, एक भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई है, वहाँ तक वे इस तरह देखे समझे जाते हैं मानों किसी देश की सभ्यता की वे पहिचान हों। किन्तु काव्य और साहित्य एक भाषा में आबद्ध होकर रह जाते हैं। कण्ठ का सहारा, आँखों का आश्रय, कानों का उन्माद कुछ भी उन्हें तब तक प्राप्त नहीं, जब तक उस रस को उसी भाषा में समझने वाले न बैठे हों। तिस पर उस काव्य का लेखक यदि छुपने के तप का अभ्यासी हो तो, 'करुणा कण' और 'शैवाल' की ओर लोक-रुचि का पहुँचना कठिन क्यों न हो जाय?

किन्तु कला के चित्र और मूर्ति, नृत्य और सगीत आनन्द तो हैं। वे अपने मे 'गति' नहीं हैं और काव्य और साहित्य आनन्द के ओतप्रोत रूप में विश्व की महान गति भी हैं। अतः तीर्थयात्रियों की तरह खैयाम और कालिदास और उन जैसे हृदय के देश में शताब्दियों से अलख जगाये, अनुराग और विराग के, जीवन और मरण के मधुक्षणों को जाग्रत कर मानवता को जीवनदान देने चले आ रहे हैं।

'हृदय' ने इस आनन्द को अपने मरने के अमर क्षण तक नहीं छोड़ा। काव्य का वह आग्रह जो अन्तिम सासों तक हरा रहे, अपने में ही एक बहुत बड़ी वस्तु है, और 'राग' देश के शोधकों के लिये, सुवर्ण-पथ का आमन्त्रण है कि वे देखें कि मधुर सासों की यह सड़क युग को किस तीर्थ की ओर खींचे लिये जा रही है।

मेरे निकट तो 'हृदय' मानों मेरे ही कमरे में बैठे हैं, और अपनी मुसकाहट और अपने कहकहे के साथ कह रहे हैं:—

कौन कहे उस दिन इसके सग थे कितने अरमान चले ?
जीवन और जगत के शाश्वत थे कितने बरदान चले ?
चले न वे—उस दिन जो कहते थे कि हमें भी है चलना !
पर न साथ देने वाले थे, उस दिन के सामान चले।

मुझे तो केवल एक ही बात का दुःख है कि श्री रमाशकर जी इतने शीघ्र चल दिये कि उनका 'वायुमण्डल' जान ही न पाया कि वे कब चले गये।

—माखनलाल चतुर्वेदी

शैवाल

नहीं ये राग-रँगीले गीत !

नहीं ये राग-रँगीले गीत !

विषमता है इनमें स्वर की,
विकलता है इनमें उर की,
भाव सूने-सूने-से हैं,
कसक है बस जीवन भर की,

आँसुओं से हैं गीले गीत !
नहीं ये राग-रँगीले गीत !
नहीं ये मधु मतवाले गीत !

न है इनमें उन्माद भरा,
न रस है या कि प्रसाद भरा,
तपन है—केवल एक तपन,
और है मूक विषाद भरा !

किन्तु हैं उर के पाले गीत !
नहीं ये मधु-मतवाले गीत !
कहूँ कैसे ये अपने गीत ?

कहाँ मुझमें वह प्यार भरा ?
कहाँ वह सुख शृंगार भरा ?
झलक वह कहाँ देखने दी,
कहो तो मेरे प्राण ! जरा ?

निराशा के ये घेरे गीत !
कहूँ कैसे ये मेरे गीत ?

मैं न जानता राग

मै न जानता राग शारदे ;
कृपया तुम्हीं छेड़ दो स्वर।
क्यों न तुम्हारी ही श्वासों में,
मेरा वैभव जाय बिखर ?

मै कैसे छवि छीनूं, कैसे—
सुन्दरता साकार करूँ ?
क्यों न तुम्हारी ही आँखों में,
मेरी छाया जाय निखर ?

सूने संकेतों में कब तक,
रख पाऊँगा भेद - भरम ;
क्यों न तुम्हारी ही वाणी में
यह जीवन हो जाय मुखर ?

चरता में भी हुलस पड़े जो,
अचरता का लेकर मन ,
क्यों न तुम्हारे ही चरणों में,
यह अहंमिति हो जाय प्रखर ?

यह मुट्ठी खुलनी ही है तो—
गिरे ! एक अनुनय सुन लो—
क्यों न तुम्हारी ही छाया में
यह नश्वर हो जाय अमर ?

लहरों का न उभार

लहरों का न उभार जगा सखि,
सकुच रही शशि-चितवन-हेला।
मान लिये अवगुण्ठन उन्मन,
आज गयी री! सन्ध्या-वेला।
मूक - मानिनी सन्ध्या - वेला।

स्मित विलास अधरों पर आया,
और प्रीति उमड़ी आँखों में।
आँखें भी छवि भर न सकीं,
यह हृदय मूक रह गया अकेला।
विसुध पाथ रह गया अकेला।

अब क्या स्वर-सम्मोहन ममता,
जब उपवन में ज्वाला जागी।
अब आकुल अतृप्ति क्या देखे,
मन्थर गति-मेघों का मेला।
अस्थिर - मति - मेघों का मेला।

गायक! उठा विपञ्ची, पागल—
ले बैठा है कर में तूली।
स्वर में छवि भरने वाले,
भूला रँग में पीतम अलबेला।
मुग्ध-प्राण पीतम अलबेला।

एक साध मैंने जोड़ी है,
एक साध है उसकी थाती।
पीड़ा और प्रीति दोनों हैं,
मैं न अकेली, वह न अकेला।
सजग प्रेम कब रहा अकेला?

सजग तृष्णा को सजनि

सजग तृष्णा को सजनि,
परितृप्ति का अभिमान क्या है ?

पलक-सीमा से घिरी दृग-कोर है,
पुतलियों को बाँध बैठी डोर है,
चपल चितवन बंदिनी है रूप की,
वरुनियों में बन्द एक मरोर है,
और मधुतर—निकटतर,
प्रिय-प्रेम की पहिचान क्या है ?

धधक-धड़कन ले चला जब श्वास ही,
जब हृदय का उठ गया विश्वास ही,
मूक याचक ! क्यों न झोली फेंक यह,
जब कि पतझर बन गया मधुमास ही,
कौन अब बोले कि बस्ती में—
पड़ा सुनसान-सा है !

कर चुका हूँ सृष्टि-स्वर की साधना,
कर चुका हूँ शब्द की आराधना,
भाव फिर भी रह गये हैं मूक-से,
भार फिर भी तो लिये है कामना,
कौन जाने प्रीति के इस—
मर्म का अभिधान क्या है ?

प्राण बनकर रह गई तन में व्यथा,
जो जगत की बन गई है प्रिय कथा,
सो गयी है राख बनकर आग जो,
कौन जाने क्या अपरिचित भेद था,
प्रेम-पथ का यह पथिक—
कितना सरल अनजान-सा है!

अश्रु के बलिदान का यह हास है,
आह के मधु-पान का उल्लास है,
जो कि पल-पल विहग-पंखों पर लिखा—
प्राण! मेरे प्रेम का इतिहास है!
इस हृदय की भग्नता में,
जो पड़ा, अरमान-सा है!

मेरे पंखों पर बैठी—
वेदना आज वनकर प्रहरी,
मैं उड़ न सकूंगी क्या प्रहरी ? ॥ १ ॥

जग तो जीवन का गान बना,
मेरा घर मुझे स्मशान बना,
अनुरक्त उषा की प्रीति प्राण,
हँस-हँस कर आँगन में छहरी ।
मैं अधकार में क्यों प्रहरी ? ॥ २ ॥

पुलकित कलियों ने रास किया,
पुलिनों ने वीचि-विलास किया,
नव-नव वतास उल्लास लिये—
दौड़ा है अभी-अभी वह री !
मैं यहीं रहूँगी क्या प्रहरी ? ॥ ३ ॥

मधु-भार लिये मधुकर विभोर,
रस-भार लिये रस की हिलोर !
कागर ये भार वन गये री !
मै उड़ न सकी घर मे ठहरी ।
मेरे पखों पर क्यों प्रहरी ? ॥ ४ ॥

आकाश उठ गया प्यार देख,
भू का स्वच्छन्द विहार देख,
मस्ती का ऊँचा छोर किये—
यह प्रीति-पताका भी फहरी !
मैं ही क्यों वन्दी हूँ प्रहरी ? ॥ ५ ॥

किस क्षण

किस क्षण का यह सस्मित जीवन ?
किस जीवन का यह विस्मित क्षण ?

तू मोल-परख यह विहग विकल,
दे इसे मुग्ध श्वासों का बल,
फिर प्राण ! अंक में सुला इसे,
यह मधु चुम्बन प्रति मूर्च्छित पल !

कह उस वैदेहक से कि ठहर,
कुछ सोच-समझ क्रय-विक्रय कर,
ले आत्म-समर्पण ही का पण,
यदि मोल न पाये विस्मित क्षण !

यह सीकर-कर-सा लघु-लघु तर,
यह ग्रीष्म-भोर-सा मुग्ध अधर,
यह उषा - तारिका - सा तन्वी,
यह मेघ-छाँह-सी एक लहर !

तू दौड़ पहुँच जा अपने घर,
अब ठहर न पागल इधर-उधर,
यह होता जाता है उन्मन,
मत भूल कि यह है विस्मित क्षण !

आवास इसे दे—मुक्त द्वार !
विश्वास इसे दे—एक वार !
आया है अवसर वनकर यह,
तू उठ समेट यह विभव-भार !

अब अंधकार का उठा छोर,
ले एक जोगिया की मरोर,
यह है बिछोह का प्रथम मिलन,
यह तुझे मिला है विस्मित क्षण !

मधु बोल कि यह तुझसे बहले,
कुछ सुन ले, कुछ इससे कह ले,
दोनों ही पा जायें परिचय
दोनों खो जाने के पहले।

तू है ससीम का एक पाप,
यह है असीम का एक शाप,
दोनों हैं दोनों के बन्धन,
जीवन है केवल विस्मित क्षण !

|||
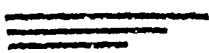
दीप न जगा

दीप ना जगा अरी !
हँस रही विभावरी ।

तू अजान, क्षीण किरण—
का न मान ला अरी !
दीप्त कामना न देख,
स्नेह ना जला अरी !
हँस रही विभावरी ।

यह उदास ज्योति तू,
उसाँस मे बुझा अरी !
भूमि की व्यथा न आज,
स्वर्ग को सुझा अरी !
हँस रही विभावरी ।

क्यों विराट की प्रतीति,
यों रही भुला अरी !
विकल प्राण का वियोग,
आग यह सुला अरी !
हँस रही विभावरी ।

यह सुख है

यह सुख है प्राणों के स्वर का।

उठा रुदन है मधुर हँसी पर,
फूट चला निर्झर अन्तर का,
सिन्धु-राग का मूर्च्छन आया—
भाग्य लिये सूने अम्बर का;

यह सुख है संगीत अमर का।

प्राणों को श्वासों में भरकर,
श्वासों को स्वर में उतार कर;
मेरी करुणा दूर देश में—
चली गयी री! क्षितिज पार कर,

यह सुख है अनुराग अमर का।

मेरे पारिजात, पाटल—
यूथिका सुमन मुरझाकर सोये;
मूर्छित भाव तूलिका ने अब,
शुष्क पंखुरियों से दृग धोये;

यह सुख है सौन्दर्य अमर का।

इन लहरों का लास्य उठा है,
नाच मयूरी के नर्तन में;
तड़प उठी री! किन्तु अपरिचित,
तृष्णा तो इस श्यामल घन में;

यह सुख है अभिलाष अमर का।

ध्वान्त निशा के आँगन में यह,
चिता जागती है अँगार ले,
और किसी आशा-प्रदेश में,
धूल फूलती है सिंगार ले,
यह सुख है सौभाग्य अमर का।

दौड़ पड़ा हूँ इस सीमा के पार,
अपरिचित मैं अपराधी;
दौड़ पड़े हैं अलख देश के,
बन्धन बनकर मेरे साथी,
यह सुख है विश्वास अमर का।

चलो उस ओर

चलो प्राण ! उस ओर ।
इस अम्बर की प्रथम व्याप्ति का जहाँ विमूर्छित रोर,
शून्य का सबसे पहला शोर ।
लिये हुए अपने अञ्चल में जग की प्रथम मरोर,
चलो प्राण ! उस ओर ।

नव वसुधा के नव चेतन का, जहाँ नवल शिशुहास,
अंकुरित वैभव का उल्लास ।
सर्व प्रथम कलिका के पहले सौरभ का उच्छ्वास,
और हँसता-सा पहला भोर ।
चलो प्राण ! उस ओर ।

भू-अन्तर में रुद्ध ताप का जहाँ प्रथम उन्माद,
विश्व का पहला तरल विषाद ।
प्रथम वीचि के मुग्ध जागरण की पहली सी याद,
मिला जब भू अम्बर का छोर ।
चलो प्राण ! उस ओर ।

जहाँ किरण-वेला में केवल प्रथम तेज का मान,
उषा का पहला मुखरित गान ।
अग्नि-शिखा-वैभव पर पहला जीवन का बलिदान,
जगी हो प्रथम चन्द्र की कोर ।
चलो प्राण ! उस ओर ।

जहाँ प्रीति के मुग्ध संचरण का नव-नव उन्मेष,
उसी का प्रथम-प्रथम निःशेष ।
जागृति के पहले विराम का सब से प्रथम प्रदेश,
लगी है आज उधर ही डोर ।
चलो प्राण ! उस ओर ।

इन टूटे टुकड़ों से पूछो

इन टूटे टुकड़ों से पूछो—
इन्हें प्यार क्यों भार हुआ ?
क्यों ये कण-कण बन बिखरे हैं,
वह जब एकाकार हुआ ?
धूल भरा शृंगार धूल भी,
आखिर क्यों न सम्हाल सकी ?
फूट पड़ी क्या आह पत्थरों से,
या हाहाकार हुआ ?

इन्हें धरोहर सौंपी थी किसने,
कब, किसको याद रहे ?
ये न बतायेंगे पत्थर हैं, इन्हें,
न इसकी साध रहे।
ये न कहेंगे क्या खोकर, क्या—
लेकर यहाँ पड़ा है क्या ?
सब कुछ हो बरबाद किन्तु यह—
दुनियाँ तो आबाद रहे।

प्रेम हँस रहा है, ना जाने,
किसका बिछुड़ा प्यार पड़ा।
पीड़ा रोती है, ना जाने,
किस दुखिया का भार पड़ा।
हूक-हूकती है ना जाने,
कौन प्राण देकर आया।
द्रोह खीझता है ना जाने,
किसका यह अविचार पड़ा।

कौन कहे, उस दिन इसके सँग,
थे कितने अरमान चले ?
जीवन और जगत के शापित,
थे कितने वरदान चले ?
चले न वे उस दिन जो कहते—
थे कि हमें भी है चलना।
पर न साथ देने वाले थे,
उस दिन के सामान चले।

कितनी बेसुध वेला थी जब,
था अलक्ष्य अभिसार जगा।
पलक मूंदते ही किसने जाना,
कि एक संसार जगा।
चाह मिटी जब जीवन की तब,
प्राणों की कविता जागी।
और मृण्मयी पर प्रमत्त-सा
सोने का शृंगार जगा।

यहीं चली आयी थी क्या तब
सारी दुनियाँ की ममता ?
मिट्टी मे मिलने आयी थी
क्या सम्राटों की क्षमता ?
इन प्रस्तर-खंडों मे रजकण—
के समूह में—घिर-घिर कर,
थकित हो गयी, अरे थकित—
हो गई विश्व की चञ्चलता।

ठगिनि ! लिये बैठी है किस—
भोली शिशुता की कोमलता ?
पनप न पायी धूलों में भी
किसी भूल पर स्नेह-लता ?
क्यों न सम्हाल सकी अन्तिम—
अभिलाषायें सूने जग की ?
क्यों टूटी, बिखरी है, क्या—
कुछ शेष रह गयी निष्फलता ?

कुछ तो बता कि तुझमें क्या है ,
क्या है यहाँ छिपा रहता ?
यह सूना है देश, यहाँ कोई—
किससे है क्या कहता ?
कौन पूछता होगा आकर यहाँ
कहाँ की बात अरे !
कौन यहाँ पर सुनता होगा
किसकी—कितनी मर्म-व्यथा !

तुम्हीं कहो—तुम जहा वहा
फूलों-सा हँसता प्रात कहो ?
तुम्हें वहा मिलने आती है,
यह चादी-सी रात कहो ?
इन बिखरे तरु-पातों-सी क्या,
कसक वहा भी साथ रहे ?
बोलो एक बार तो अपनी,
दुनिया की कुछ बात कहो ?

तुम सुकुमार लालसा, कोमलता—
की मूक कल्पना-सी।
यह निष्ठुर-निर्मम अभावमय
सर्वनाश की प्रतिमा-सी।
मृदु पलकों पर पद रखनेवाली—
शोभा की तुम रानी?
यह है अरे! शूल-रज-कण
प्रस्तर-कठोर पथ-रचना सी!

मैं भूला हूँ—तुम न रूप हो
तुम हो मतवाले केवल!
यहा चले आये हो अपनी,
चाह वेदना ही केवल!
तुम कुछ कहते भी होगे—
पर सुन न सकूँ उस जग का रव।
तिस पर ले आया हूँ मैं भी
इस जगती का कोलाहल।

मैं भी यही चाहता हूँ, तुम-सा—
ही यहा विहार करूँ!
यहीं गोद में किसी प्रणय का
मधुर साधना-भार धरूँ!
यहीं सुनाता रहूँ शून्य-संकेतों—
में निज करुण-कथा!
यहीं कामना को मैं पूज—
टूटे मन से प्यार करूँ!

१

उस पथ का तो चोर छिप चुका,
इस सीमा के अञ्चल सुन ओ!
पथ के संयोगी! अभिवादन,
पथ-वियोग के क्षण! अब मत रो!

२

राज-मार्ग के अभिसारों में,
छाया छूनेवाले रज-कण!
उड़ चल ममता की क्षमता ले—
इस सूनी पथ-रेखा पर तो!

३

जब इस ओर दृष्टि दौड़ी थी,
तब न एक संकेत मिला था?
आज देखले यहाँ कि तू—
पीछे कितना कुछ आया है खो!

४

यह विश्वास कि 'अपनापन'—
यह परिचयहीन-प्रदेश लिये है!
यह लालसा कि खोकर भी—
'वह' यहीं-कहीं फिर आ बैठा हो!

५

राह भटकनेवालों की भी
राह पहुँचनेवालों की भी!
'एक' दिशा ही बन जाती है—
अवनि और अम्बर छूकर दो!

६

एक-एक मिलकर ही तो यह—
लगा हुआ है जग में मेला !
एक-एक जगकर ही आखिर
यहाँ सभी तो जाते है सो !

७

तू संकोच न मान बटोही !
तू अपनी पलकें न झुकाले !
कब कब ठहरेगा ले-लेकर—
उन्हें, बिछुड़नेवाले हैं जो !

८

जी भर लाये ये कितने ही—
यहीं बिखेर गये हारे-से !
वह भी भार बना इस पथ पर—
जो आँखों में भर आया हो !

९

अब कुछ कहने—कुछ सुन लेने-
की तो बीत चुकी है बेला !
दे चल अपनी बात अधूरी
ले चल अपनी पूरनता को !

१

तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !
इस विछोह के देश मिलन यह बन जायेगा एक सहारा !
तुम राका के प्राण पूर्णतम,
मैं आशा-उल्लास अनुक्रम !
प्रियतम ! तुम आओ नव घनवन
मैं बन जाऊँ प्रिय वर्षागम !
तुम गाओ, मैं गूँजूँ होकर मधुर तुम्हारे स्वर का सरगम !
कहो प्राण ! क्यों मौन—
रहे अब भाव-गीत संसार हमारा !
तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !

२

तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !
दो की इस प्रतीति में आखिर पा जाऊँगा एक किनारा !
जब विराम संकेत हो चुका,
जब विराग अभिप्रेत हो चुका,
प्रकृति-अजिर का विकल राग जब—
ले मूर्च्छना अचेत हो चुका !
जब अभाव की सीमा पर भावुक पंछी हतचेत हो चुका !
कहो प्राण ! क्यों हो न—
विसुध इस वेला में अभिसार हमारा !
तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !

३

तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !

तुम साथी हो तो गिर-थक कर भी न कहाऊँगा पथ-हारा !

क्यों चिर जीवन की अभिलाषा ?

क्यों ले बैठूँ मधुमय आशा ?

मुझे ज्ञात है, यही चिरन्तन का—

रहता है खेल-तमाशा !

तुम यदि जाग पड़ो मेरे नीरव भावों की होकर भाषा !

कहो प्राण ! क्यों खो न—

जाय चिर बन्धनमय प्रस्तार हमारा !

तुम मेरे मैं बनूँ तुम्हारा !

जानती हूँ गेह अपना

जानती हूँ गेह अपना जानती पथ-छोर !
जानती हूँ प्राण मेरा और कितनी दूर !
क्यों मुझे छलने चली यह वात—यह मग-धूर ?
क्यों उठी पद चिह्न हरने यह तरग-हिलोर ?
एक ही पथ पर चली—
तो भूल की क्या वात आली ?

नभ अकेला—कोटि ज्वालायें किये है व्याप्त !
लाख बूँदों की तड़प है एक जल की धार !
वन गया पत्थर सम्हाले रजकणों का भार !
मैं न क्या वरदान अपना कर सकूँगी प्राप्त ?
एक मन ने कोटि साधों—
की व्यथा कितनी सम्हाली ?

शूल से पूछो उसे है क्यों मृदुल की चाह ?
क्रूर कसकों में भरी है क्यों सजग मनुहार ?
तूल की यह भूल क्यों तम का वनी शृंगार ?
क्यों जलन यह वन गयी री ! शलभ-दल की राह ?
क्यों तथागत की प्रतीक्षा में—
मिटी वह आम्रपाली ?

खो चुकी हूँ एक आँसू में अगम की थाह !
कर चुकी हूँ जगत सूना एक खोकर हूक !
हो गया री ! जव समर्पण ही हिये का मूक !
क्यों अकेली-सी न हो प्रिय-अर्चना की चाह ?
एक शशि का प्यार खोकर—
क्या न होती रात काली ?

एक ही पर्दा पड़ा—क्यों छिप गया संसार ?
एक ही तो साथ खोया—सब गये री ! छूट !
एक ही तो भाव रूठा—पद गया री ! टूट !
लय अकेली ही चली बिखरा स्वरों का भार !

एक ही तो प्यास लायी
हो गये क्यों सिन्धु खाली ?

मेरे मरण का मोल !

मेरे मरण का मोल क्या ?

मैं न लूगी आँसुओं मे मोतियों का दान !
मैं न वारूँगी हँसी पर चाँदनी का मान !
मूक स्वर से ना कहूँगी विश्व का हो गान !
मै न फूलूँगी कली का तोड़कर अरमान !
धूल का भी क्रय करूँ री !
छाँह का भी तोल क्या ?
मेरे मरण का मोल क्या ?

जागती ही रह गयी री ! वह अँधेरी रात !
भोर का सपना हुआ री ! क्षीण शशि का गात !
कौन आया आज कहने प्रेम-रस की बात ?
रो चुकी री ! तब बरसने क्यों चली बरसात ?
बंदिनी की साधना पर !
मुक्ति के दो बोल क्या ?
मेरे मरण का मोल क्या ?

सजनि, आ, पर शून्यता का मोल तू ना आँक !
तू न समझेगी कि क्या यह राख बैठी ढाँक !
यह कलेजा भूमि-नभ-सा हो गया दो फाँक !
शेष जगती की तरह तू भी यहाँ ले झाँक !
पर न कहना री ! कि आयी !
ले गयी थी मोल क्या ?
मेरे मरण का मोल क्या ?

मोल लेगी रस कि जिसमें जल रही है आग ?
मोल लेगी विष कि जिसमें झूमता अनुराग ?
मोल लेगी शूल जिनपर फूलता है बाग ?
मोल लेगी फूल जिन पर झूलता है राग ?
ढूढ़ले यह हाट पायेगी—
न री ! अनमोल क्या ?
मेरे मरण का मोल क्या ?

|||

उड़ कर आया हूँ

१

उड़कर आया हूँ फिर मैं इसी किनारे।
देखूँ जाकर निज नीड़,
देखलूँ—कौन प्रतीक्षा बनकर
दो नयनों के दो दीप सँजोकर आली।
इस रजनी में, अब जो विस्मृति-सी काली।
है जोह रही री। मुझे—
गया था मैं प्रभात सा जगकर।
तब विदा यहीं आयी थी मिलने द्वारे।
उड़ कर आया हूँ फिर मै इसी किनारे।

२

मै डरता था—ना कोई मुझे पुकारे।
दौड़ा तब अञ्चल पकड़—
उषा का कोई विहग मचलकर।
तब जाग उठे लेकर अँगड़ाई द्रुम-दल,
तब पवन कह उठा—जग रे पथी। उठ चल।
जो गोद मुझे थी सुला गयी
री। वही गयी यों छल कर।
हँसते थे भू पर उतर गगन के तारे।
मैं डरता था—ना कोई मुझे पुकारे।

३

ये सभी सो गये—सभी नींद के मारे!

यह क्लान्त और यह नवल

अरी! दोनों सोये हैं मिलकर!

यह रस का है सम्भार—भ्रमर है सोया!

यह नश्वर है संसार—अमर है सोया!

यह क्षण—जिसमें भावी-अतीत

दोनों खोये हैं मिलकर!—

मेरे पलकों पर अपना भार उतारे!

ये सभी सो गये—सभी नींद के मारे!

मूर्छित मेरा गीत

१

मूर्छित मेरा गीत हो गया
आहत मेरा मृदु मधु-गुञ्जन !
बन्धन अब निश्वासों पर भी !
सुमन ! शेष कुछ और समर्पण ?

२

रही अपरिचित चाह, वेदना—
बन्दी होकर बैठी मन में !
पलकें ही छू सकी लालसा
भर न सकी आशा चितवन में !

३

मुझे कहाँ अधिकार मिल सका
जो कहलेता दरद-कहानी !
तुम्हें कसक भी मिली कहाँ वह
जो भरती आँखों में पानी ?

४

अब कैसी मधु की बातें जब
सब समेट बैठीं पाँखें ये !
क्षणभर यही देखता कोई
क्या भर लायीं थीं आँखें ये !

५

मौन रही यदि विकल लालसा
मस्ती का भी शोर हुआ क्या !
मैं तो भेद समझ बैठा हूँ
साँझ हुई क्या-भोर हुआ क्या !

६

किन्तु रिझाने आता है जो—
बन कर पागल यौवन का क्षण !
देखो तो उसकी पलकों पर
कितने पद दल-पीड़ित रज-कण !

७

भर-भर आते हैं पराग-से
हृदय देखने मन छूने ये !
जब तक होश सम्हल पाता है
कर जाते हैं तन सूने ये !

८

मैं न भरूँगा भ्रमर-भावरें
मैं न रहा उस पथ का राही !
इन आखों से मैंने तो देखा—
है बस जीवन इतना ही !

९

मैं न जानता था मेरी निस्वरता—
भी कुछ चुभन लिये है !
यह मेरी साधना साथ में
अभी और भी तपन लिए है !

१०

तुम प्रभात पर मत मचलो यों
यह रोती है सन्ध्या निर्धन !
मूर्छित मेरा गीत हो गया
आहत मेरा मृदु मधु-गुंजन !

१

परितृप्त हो गयी एक कल्पना—
में युग-युग की कविता क्या ?
जीवन की अंतिम कविता क्या ?

२

सुध-बुध भूला-सा प्यार एक,
हो पड़ा विकल संसार एक !
तूने जाना उठ गया वही, प्राणों—
का अन्तिम परदा क्या ?
जीवन कौतूहल समझा क्या ?

३

जग पड़ा खिंचा-सा तार एक;
रो दी थीं कीं मनुहार एक,
तू रीझा क्यों—फिर खीझा क्यों—
स्वर-भेद प्राण में रहता क्या ?
जीवन-रस की भी समता क्या ?

४

बहु परिवर्तन—पर ध्यान एक,
सपने कितने ! पर ज्ञान एक !
तू यह भी जान सका पागल !
है जीना क्या—है मरना क्या ?
जीवन-पथ यों ही तरना क्या ?

५

मधु हो—विष हों पर प्राण एक,
मस्ती का तो सामान एक !
उन्माद कहाँ, पीड़ा कितनी ?
सब कुछ कर डाला सपना क्या ?
जीवन इतना ही अपना क्या ?

६

है पूर्ण प्रेम की बात एक,
है पूर्ण चंद्र की रात एक,
फिर तारक-व्यूहों में उलझे वैभव—
पर अरे ! मचलना क्या ?
जीवन में इतनी छलना क्या ?

बंदिनी का भाग है यह !

बंदिनी का भाग है यह !
मान पाया है कि 'मेरा—
बंधनों में है बसेरा !
साँझ पलकों पर ठहरती
पुतलियों में है सवेरा !'
धूप-छाहीं के पहरुआ कर रहे हर आन फेरा !
पूछती है नियति—'बंदी है न जीवित प्राण मेरा' ?
बंधनों से विवश कितना—
मुक्त-सा अनुराग है यह !
बंदिनी का भाग है यह !

क्या कहूँ पद-चाप किसकी !
है हृदय पर छाप जिसकी !
जानती हूँ इस प्रतिध्वनि में—
भरी है माप रिस की !
मैं बनी अपराधिनी हूँ एक अपनी साध लेकर,
ढुर पड़ा जलकन सुमन पर सिंधु-मान अगाध लेकर !
जलद में भी दामिनी-अञ्चल—
जले वह आग है यह !
बंदिनी का भाग है यह !

प्राण ! आँखों से न पूछो,
भ्रमर ! पाखों से न पूछो,
एक रस, तुम एक, मैं हूँ एक
लाखों से न पूछो !
एक रजकन ही कहेगा, बात क्यों शृंगार की हो ?
बंदिनी मैं हूँ तुम्हारी चाह क्यों मनुहार की हो ?
शून्य नभ भी रो पड़ेगा

चातकी का राग है यह !
बंदिनी का भाग है यह !
जो मरण का प्रण लिये थी,
तपन में जीवन लिए थी,
दो बता ! वह आग क्या यह
झूमता सावन लिये थी ?
सूखती हूँ किन्तु मैं तो अर्क और जवास बनकर,
तृप्ति मेरी उठ रही है आह और उसास बनकर !
एक 'स्वाहा' बोलने ही के
लिये क्या याग है यह !
बंदिनी का भाग है यह !

अब दया की बात दानी ?
मान की ऐसी निशानी ?
आज उपसंहार में भी—
है अधूरी ही कहानी ?
तब न श्वासों पर हृदय का आज मेरा प्यार तोलो !
बंदिनी से तो न माँगो यह कि कारागार खोलो !
बंधनों में ही मिले तो—
बंधनों का त्याग है यह !
बंदिनी का भाग है यह !

ना जानूँ क्या कह गये

१

ना जानूँ क्या कह गये प्राण,
वह कौन भेद से भरी बात।
मेरे श्वासों का कम्पन ले,
क्यों दौड़ा री! यह मलय वात?

२

मैं जाग रही, क्यों जगते हैं
मेरे मानस के मूक पाप?
क्यों सान्ध्य किरण भर लायी है,
जगती पर अपना स्वप्न-शाप?

३

मैं कभी हँस पड़ी थी, रूठी थी—
कभी सहज ही भौंह तान।
क्यों चुप न रह सकी मुकुल-राशि,
क्यों विकल हो गया शूल-गान?

४

था लिया निशा का हार पहन,
मैं बनी सजनि कितनी अजान।
क्यों मुकुर-राशि ने ओस-बिन्दु—
भरते हैं मेरा मुग्ध मान।

५

दो बोल गा दिये थे मैंने,
मेरे जीवन की एक चूक।
पिक बनी साँवली हूक हूक,
क्यों बनी बावली कूक कूक?

६

मैं अचल-हठीली बनी रही,
मैं निर्झर ही-सी स्नेह-भ्रान्त।
क्यों द्रवित हिमालय? फूट पड़ी—
क्यों मानस की करुणा प्रशान्त?

७

फिर भी क्या थे कह गये प्राण,
ना मुझे आज है तनिक याद।
क्यों भ्रमर-भीर यह दौड़ी है,
ले-लेकर सौरभ का प्रमाद?

८

मैं रोक न पाई री! उनको,
उन्मुक्त कर दिये गेह-द्वार।
क्यों मुझे भोर ही से मिलती,
सूने मे सन्ध्या की पुकार?

९

मैं देख न पायी री! उनको,
ना जानूँ उनकी कौन राह।
क्यों एक धरातल पर बैठी,
क्रीड़ा करती है धूप-छाँह?

१०

मै दौड़-दौड़ हारी हूँ री!
सब छोड़ चुकी हूँ गेह-धाम!
क्यों छोटे पंखों पर पंछी—
लाते उतार जीवन-विराम?

रस-धारों में तरता है तृण,
रस का प्यासा है तट का मन।
दोनों हैं तृष्णा के बन्दी,
आकुल है दोनों का जीवन॥

वह भूला-भूला-सा बहता,
वह सूना-सूना-सा रहता।
यह एक कहानी सुनता है,
वह एक कहानी है कहता।
तृण मुक्त किन्तु कितना अतृप्त,
तट—तृष्णा-बंधन लिये तृप्त।
दोनों ही हैं आसक्त-प्राण
पर जीवन दोनों से विरक्त।

वह सैकत शय्या पर उन्मन,
यह लहरों पर करता नर्तन।
दोनों हैं तृष्णा के बन्दी,
आकुल है दोनों का जीवन।

उठता-गिरता तृण बार-बार,
तट बुला रहा बाँहें पसार।
तृण लौट न पाया, था अधीर,
तट ओर उमड़कर चली धार।
वह तृण की ममता ला न सका,
वह तट को छूने जा न सका।
तट चुप था—तृण ने क्या पाया,
तृण मूक कि तट कुछ पा न सका।

इसके मानस में उत्पीड़न,
उसके अन्तर में एक तपन,
दोनों हैं तृष्णा के बन्दी,
आकुल है दोनों का जीवन।

तृण भूला—रस की चाह यही,
तट भूला—रस की राह वही।
फिर भी दोनों ने भूल-भूल—
भूलों में रस की थाह गही।
वह चला चूमने लहर लोल,
यह कैसे रह पाता अबोल।
वह स्नेह और यह स्नेह-भार,
मिट्टी-तृण का क्या मोल-तोल।

कण-कण हो बिखरा तट का मन,
क्षण-क्षण मूर्छित छोटा-सा तृण।
दोनों थे तृष्णा के बन्दी,
आकुल था दोनों का जीवन।

|||

मूक ही रह जाना —

मूक ही रह जाता री! प्राण!
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

मिला है कलियों को अभिशाप,
मचलता शूलों पर वरदान।
कौन सा एक विटप का पाप,
कि जिसके ये दो-दो अरमान!
हो रहा है यों ही निर्माण;
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

तल पर तुला स्नेह का त्याग,
जगी मिट्टी में कंचन किरण।
कौन सा एक दीप का राग,
कि जिसकी ये दो-दो हैं जलन!
न होगा री! दीपक निर्वाण,
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

चातकी माँग रही है मरण,
शुक्ति कर बैठी है अपराध।
कौन सा एक तृषा का वरण,
कि जिसकी ये दो-दो हैं साध!
चाह क्यों हो पाये म्रियमाण,
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

लगाती याद कुंजों में भीड़,
तोड़ देती है विस्मृति तार!
कौन सा एक हृदय का नीड़,
कि जिसके ये दो-दो संसार!

एक से एक पा रहा त्राण,
बन गया स्वर श्वासों का त्राण!

कहीं भटका है मन सुनसान,
दृष्टि डूबी है कहीं अकूल।
कौन सा एक विकल है मान,
कि जिसकी ये दो-दो हैं भूल?
फूक मत और वियोग-विषाण,
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

भरी इन आँखो में है प्यास,
और उन आँखों में है नीर।
कौन सा एक अलख उल्लास,
कि जिसकी ये दो-दो तस्वीर?
हृदय है एक, एक है प्राण।
बन गया स्वर श्वासों का त्राण।

आग मिली दीवानेपन की

आग मिली दीवानेपन की
अरमानों की राख मिली,
इस सूनी दुनियाँ में आकर—
मुझे विरह की साख मिली;
दूर-दूर रहने वाले इन—
अपनेपन से प्यार मिला,
और होश रखने वाले से
बेहोशी की आँख मिली।—१

इन ज्वालाओं से जगती की—
शान्ति मिली, अनुराग मिला,
यहाँ जन्म का भार लिये—
वैभव का सूना भाग मिला;
प्रतिक्षण का सन्देश यहाँ—
तत्क्षण ही दृढ़ विश्वास बना,
इस अटूट बन्धन से ममता—
का यह टूटा ताग मिला।—२

ऊँची उठने वाली लपटों से—
लौ का अरमान मिला,
और भस्म होने वाले तन—
से अपना अभिमान मिला;
माला की यह छाया झूली
स्वर्ण-हिंडोले में आकर,
इन फूलों हा! में फैलो लो,
शूलों का अपमान मिला।—३

उड़ती हुई चिनगियों से मिटती—
बुझती - सी आह मिली,
दृष्टि-तरंगित इस मरीचिका—
में जीवन की थाह मिली;
कोटि-कोटि भेदों वाली इस—
दुनियाँ का सब भेद खुला,
भूल न सके यहाँ अब कोई
ऐसी सीधी राह मिली।—४

भाषा मिली अबोल, भावना—
में असीम का माप मिला,
स्मित-सम्भार लिये चिर जीवन—
का अनन्त अनुताप मिला;
विस्मृति के सूने सपने भी—
इस जगती को भार हुए,
आज राख के ढेरों पर भी
विभु का पूर्ण प्रताप मिला।—५

दर-दर की भिखारिणी से भी
त्रिभुवन का सम्राट मिला,
यही ठौर है जहाँ सूक्ष्म से—
आकर स्वयं विराट मिला;
यहीं विषमता में समता का—
व्यापक-मोहक गीत सुना,
यहीं अस्थि-पञ्जर पर रीझा—
चिर वैभव का ठाट मिला।—६

इस वन्दीगृह ही में अब तो
वन्धन लेकर मुक्ति मिली,
जीवन और मरण की उलझन—
की यह सीधी युक्ति मिली;
दूर-दूर रहने वाला यह अन्तर—
अन्तर्हित है अब,
एक जागरण मिला, एक ही—
जग को यहाँ प्रसुप्ति मिली।—७

सीमा-हीन विश्व से सीमित—
यहीं परिधि साकार मिली,
रूठे हुए प्रेम से लाखों—
लपटों की मनुहार मिली;
यही देश है जहाँ न मिलने—
वालों का संयोग हुआ,
यही ठौर है जहाँ करोड़ों—
विजयों पर यह हार मिली।—८

जग कहता विराग, मुझको तो
यहीं पूर्ण अनुराग मिला,
इस अटपटे देश का मुझको—
यहीं एक समभाग मिला;
चिता ? नहीं, यह तो मेरी ही
अमृत भावना का घर है,
इसी पालने में तो मेरा—
सहज चिरन्तन त्याग मिला।—९

यहीं सान्त से अन्तहीन
द्वंद्वों से एकाकार मिला,
यहीं बँधी मुट्ठी में मेरा—
सोने का ससार मिला ;
ओ मिट्टी के ढेर ! तुझे भी—
मुझमें प्रीति-प्रतीति मिली ,
या गत श्वासों की प्रतिध्वनि में—
जाग्रत हाहाकार मिला ?—१०

मेरी आशा का

१

मेरी आशा का मृदुल हास!
पलकों के आँगन में खेला
लेकर शैशव-शशि का उजास।
अनजान हृदय का अंधकार,
क्षण भर छू पाया कर-प्रसार,
क्षण भर रजनीरानी-सा खिल—
कर सका समर्पित सुरभि-सार।
किस क्षण का प्रिय आकर्षण फिर,
ले आया ऊर्म्मिल मधु-प्रवाह!
पलकों से उतर पुतलियों में,
फिर दृग-कोनों से खोज राह,
फिर लिये मिलन की विकल चाह,
आ गया विश्व के मानस में ले पूर्णचंद्र-यौवन-विलास!

२

मेरे प्राणों का मुग्ध-श्वास!
प्रान्तर-पथ का मधु वह प्रियतम,
अरुणोदय वेला का वतास।
वन विहग-बाल सा चपल-चाव,
फिर ले चचल पंखी-स्वभाव,
द्रुत विस्मय-सा उड़ चला अरे!
नभ छू-छू कर भर विकल भाव।

फिर बहा बाँसुरी के स्वर-सा,
सूने में प्रतिध्वनि छोड़-छोड़,
तन-नीड़ झूमता रहा किये—
रमणीय प्रकृति से व्यर्थ होड़,
स्वर से लय, लय से राग जोड़—
बन गया विश्व का गान वही मेरी गति का निर्मुक्त लास !

२

मेरी ममता कितनी उदास !
उल्लास हृदय में जाग्रत-सा,
मूर्च्छित-सी है पाषाण प्यास,
उड़ गई यहाँ से कूक-कूक,
पिक पंखिनियों की प्राण-हूक,
फिर स्वाहा का संवाद सुना,
जीवन की ज्वाला गई फूंक,
बरसा आयी, रो गयी, शरद भी—
झाँक गई झिलमिल निहार,
हिम ठंढी साँसें छोड़ चला
पतझर का बिखरा हृदय-भार,
फिर मधु का वैभव एक बार,
न गया विश्व का परिवर्तन, मेरे लघु जीवन का विकास !

गा निशीथ में

गा निशीथ में विराग ! एक करुणा रागिनी !
मधुर स्वप्न आ न आज
दे जगा सुहाग-साज ।
पलक-द्वार ना करें—
प्रदीप्त मूक प्रेम-राज,
फूक-फूंक एक हूक सिहर उठे मानिनी !

विकल व्यथित हृदय-भार,
वितरित कर द्वार-द्वार,
सुप्त सृष्टि का विषाद,
भर ले स्वर में उदार,
तारों में पुलक प्राण ! पुलकित कर यामिनी !

मुझे न हँसने देते

मुझे न हँसने देते सखि,
ये कुसुम हँसे लेते हैं।
मैं स्वर-भार सम्हालूँ क्या,
ये अलि छीने लेते हैं।

मेरा राग रहेगा किस स्थल—
अनुरञ्जित है यह नभ-मण्डल,
मान मनाऊँ क्या जब फूला—
पा वसन्त को यह अवनीतल ?
क्यों प्रिय को पागल पञ्छी—
मनुहार दिये देते हैं ?

मिलन-साध लै ऊषा भूली,
आशायें भर सन्ध्या फूली,
छीन ले गया अलख चितेरा—
सरस कल्पना-कर की तूली।
अब ये नयन अजान सजनि,
क्यों दरद भरे बैठे हैं ?

उस क्षण मेरा प्यार

उस क्षण मेरा प्यार जगाना।

जब पलकों के परदे पर इस—
दुनियाँ का होता हो चित्रण,
जब वह दुनियाँ भी बैठी हो—
बनी पुतलियों में आकर्षण,
तब नवीन संसार जगाना।

हृदय भेजता हो जब धड़कन,
कहीं छिपाने को सूनापन,
जब विश्वास छीन कर कोई—
कर जाता हो उसको निर्धन,
तब असीम अभिसार जगाना।

जब हो केवल एकाकीपन,
कहीं न कुछ भी छू पाये मन,
जब मन भी खो बैठे बरबस,
अपनी स्मृति-विस्मृति के बंधन,
तब सूना विस्तार जगाना।

जब हो अन्तर्भूत चिरन्तन—
में अभाव का झंझा नर्तन,
जब मेरी ही दृष्टि प्रलय-सी,
घिर मुझ पर बादल बन,
तब रस-विकल मलार जगाना।

५

जब निर्झरिणी-सी यह आशा,
पुलकित करे हृदय-तट आ-आ,
जब अशेष सिकता-कण चुम्बन-
सी हो जीवन की अभिलाषा,

तब वह हा-हा-कार जगाना।

तुम रूठे थे प्रिय !

तुम रूठे थे प्रिय ! एक बार ।
स्मृति का लेखा अब कहाँ शेष ?
मैं भूल गयी हूँ काल-देश,
भूली हूँ वह भी एक भूल,
जिसने तुमको यों दिया क्लेश,
अब याद करूँ मैं लाख बार ।
तुम रूठे थे प्रिय ! एक बार ।

तुम ही कह दो ना वह अतीत ।
अंकित कर दो वह क्षण सभीत ।
क्यों एक भूल का भार लिये ?
गा दो धीरे-से एक गीत,
मैं जान सकूँ फिर किस प्रकार—
तुम रूठे थे प्रिय ! एक वार ।

मै भूली हूँ, तुम याद करो,
मैं विरचूँ, तुम बरबाद करो,
मैं बंदी और तुम्हारा घर !
तुम रहो, मुझे आज़ाद करो !
पर कर लेने दो यह पुकार—
तुम रूठे थे प्रिय ! एक वार ।

मेरी ही पीड़ाएँ—न आयँ ?
मेरी ही चाहें—सो न जायँ ?
मेरा व्रण—मैं ही छू न सकूँ ?
मेरी ही आँखें रो न पायँ ?
दुख देने में अब यह विचार,
तुम रूठे थे प्रिय ! एक वार ।

मैं फूल नहीं, चाहती शूल,
मैं स्वर्ण नहीं, चाहती धूल,
मैं नहीं चाहती प्रेम, प्राण !
मुझको दे डालो एक भूल,

हाँ वही भूल, जिसको निहार—
तुम रूठे थे प्रिय ! एक बार।

मैने इसी मिलन पर

१

जब सुन लेता हूँ—सपने भी मेरे निकट न आने पायें,
पलक-ओट पल भर न कामनायें एकान्त मनाने पायें।
रहें पुतलियों में पीड़ायें खिची-खिंची सी किसी छोर से,
विवश बनें, सुध खोने भी ना अन्तरतम तक जाने पायें।

२

तब कह लेता हूँ बंधन का, यही छोर बंधन का लय है!
मैं जागूँ तो मेरी करुणा पा जाती एकान्त हृदय है,
इन सपनों की अँधियारी में कौन चला है दीप सँजोये,
कौन कह रहा 'हाँ' जब जगती ही 'ना' का करती अभिनय है।

३

जब वे कह दे, मेरे बंदी! तुम छू भर लो ये हथकड़ियाँ,
तुम्हें देखने ही आयी हैं महाकाल की बिछुड़ी घड़ियाँ,
तुम मृत्युञ्जय बनो—झूलने दो फाँसी पर जीवन-ममता,
मेरी शाश्वत करुणा को तुम और पिरोने दो कुछ लड़ियाँ।

४

तब यह सच है, मैंने ही बंदीगृह का विद्रोह किया था,
मैंने ही अपनेपन पर अड़जाने वाला मोह किया था,
मैंने ही इन जंजीरों पर विरह-रागिनी प्रति क्षण छेड़ी,
मैंने इसी मिलन पर मिटनेवाला आत्म-विछोह लिया था!

५

अब कोई कह दे मेरे प्राणों का वह दुख-दाह कहाँ है?
अब कोई सुन ले मेरी लालसा लिये उत्साह कहाँ है?
यह सब कहते हैं किसकी थाती पर यह व्यापार-बनिज था?
पर मैं कहाँ और मेरी ममता का मूक प्रवाह कहाँ?

किन सपनों का संभ्रम

किन सपनों का संभ्रम आली,
बरस पड़ा है डाली-डाली ?
कौन अलक्षित प्यास भर गयी—
है मधु-रस से प्याली-प्याली !
पलक खोल कर किसे देखने,
ये प्रभात के साथ जगे री ?

रूप और सौरभ था, रस था,
मस्त हवा का झोंका बस था,
पर किसका उन्माद याद बन,
इन्हें ले चला था बेबस-सा ?
ये बड़भागी क्यों अभाग के—
शूलों पर जाकर मचले री ?

किस छाया ने इन्हें छुआ री,
अपनापन जो भार हुआ री ?
इन्हें कौन भा गया कि क्षण भर,
का भी वह अरमान लुटा री ?
राजमुकुट पाकर भी क्यों ये,
मरण सेज पर जा बिखरे री ?

इसीलिए पिक-गान हुआ था,
मधुपों का आह्वान हुआ था,
इसीलिए पतझर का आली,
यह वसन्त मेहमान हुआ था;
इन विराग के बर्दों पर ही,
क्यों ये उपवन सजनि, सजे री ?

अब द्रुम-दल मनुहारें चुप क्यों ?
अलि की प्रेम-पुकारें चुप क्यों ?
अम्बर में अँगार भर-भर अब—
शशि की अमृत फुहारें चुप क्यों ?
सन्ध्या की झाँकी में क्या देखा
जो इनके पलक लगे री ?

|||

प्रिय विजय का हास

प्रिय विजय का हास,
मधुऋतु के अधर पर झूलता है,
सुरभि बदी सुमन की
क्यों सुमन बदी शूल का है?

पिक-विपञ्ची के स्वरों—
में जोगिया तो जागता है।
देख री! क्यों भ्रमर,
पग-पग गीत की गति भूलता है?

मञ्जपी-तूली, नवल—
रंग-पुष्प-पत्र, अदेह-सी छवि,
प्रकृति-पट का यह चितेरा,
कौन सखि, वातूल-सा है?

किस विरहिणी का जगा—
अनुराग 'सत्य', सकाम 'सुन्दर!
आज विष क्यों मधु पिये है
आज 'शिव' क्यों झूमता है?

है अलक्षित लालसा रस
प्यास प्राण अतृप्त अनुपम,
क्यों असीम विलास ले,
छवि-सिन्धु आज अकूल-सा है?

शून्य नभ क्या स्वर्ण-रजत
लुटायगा रवि-शशि-करों से,
विश्व-यौवन—मधु—विभव,
जब प्राण ही में फूलता है!

कर न तू अभिमान, आली!
पूज वह बलिदान शोभन,
नव वसंत-सुहाग यह
जिसकी चिता की धूल का है।

वह मूक और यह
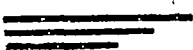
वह मूक और यह मुखरित क्यों ?
लघु अणु मेरा है परिधि-प्रान्त,
क्यों हो विराट उन्मत्त भ्रान्त ?
है पूर्ण चन्द्र शीतल प्रशान्त,
सागर होता है विचलित क्यों ?

मुख-छवि से तो संसार घिरा,
क्यों हो जाती है विकल गिरा ?
आँखें तो भरती हैं मदिरा
आँसू होते हैं निपतित क्यों ?

प्राणों में तो मस्ती फिरती,
क्यों मूक श्वास उठती-गिरती ?
मेरी तृष्णा बहती-तरती
जग का जीवन है उमगित क्यों ?

घन-सा अस्थिर तो है यह तन,
क्यों पीड़ा चमक उठे क्षण-क्षण ?
दौड़ा-दौड़ा फिरता है मन
अनुमान हो गये विकसित क्यों ?

है सूनी-सूनी पथ-रेखा,
फिर भी क्यों पथिकों का लेखा ?
मेरा दुख-सुख मैंने देखा,
कोई होता है परिचित क्यों ?

क्यों न कह दूँ

क्यों न कह दूँ बात जी की ?
खेलती है सजनि राका विहँस हिल-मिल ज्योतियों से,
पूजती है चाँदनी शशि-चरण चुप-चुप मोतियों से,
हो न जाये रात फीकी।

कुमुद-गुम्फित-केश-कुञ्चित-ऊर्म्मियाँ सरसी सम्हाले,
आँकती है प्राण-प्रियतम-रूप शत-शत भाव वाले,
प्राण ! मेरी साध ही की।

मृदुल पल्लव-शयित कलिका स्वप्न के अभिसार में है,
मधुप-मन मधु-रागिनी ले भोर की मनुहार में है,
प्रेम की यह पीर पी की।

लिख रही है किरण कल की सब कथा इस श्याम पट पर,
रश्मि छोरों से बँधी है तरणि किस अज्ञात तट पर,
कौन जाने बात जी की।

हास-रस-सौरभ सकल शोभा निशा की गोद में है,
विश्व का चीत्कार इस क्षण नींद में है—मोद में है,
मौन-वेला मानिनी की,
क्या कहेगी बात जी की।

अनजान हृदय का

अनजान हृदय का प्यार हुआ।
यह एक शून्य कितना अशेष,
जो इस अभाव का भार हुआ!

यह तुम्हें एक आभास हुआ,
मुझको जीवन-विश्वास हुआ,
यह सहज तुम्हारा कौतूहल,
मेरे प्राणों का पाश हुआ,
यह एक पहेली खूब मिली
जो निराकार साकार हुआ।

दरबार लगा—सजली झाँकी;
प्रियतम की छवि किसने आँकी,
मनुहारें मचल पड़ीं कितनीं,
मस्ती थी किन्तु न था साकी;
पागल मैं ही ठहरा, मेरा—
सपना ही सब संसार हुआ।

फिर वाह-वाह, फिर गान एक,
कल कंठों पर मृदु तान एक,
फिर वही पवन का लहर-लास्य,
फिर पाता हूँ सुनसान एक।
यह शून्य श्वास क्या विश्व-गीत—
की लय का स्वर-सम्भार हुआ।

रवि की मरीचिकाओं का छल,
ले चली साँझ भर-भर अंचल,
वह फूल खिला-मुरझा टूटा,
सींचता रहा उपवन दृग-जल,
यह सौरभ प्राण अकेला-सा
क्या मधु ऋतु का शृंगार हुआ।

यह तन तो छाया का उछाह,
यह मन भी उमड़ा-सा प्रवाह,
मेरा रह ही क्या गया कि जब—
चल दिया प्राण भी एक राह,
प्रिय-स्मृति की ग्रंथि खुली अब क्या,
जब प्रियतम पथ के पार हुआ।

यह रंगमंच—ये रंग-राग,
यह भूमि, उठा वह स्वर्ग जाग,
फिर सागर-सा गम्भीर गीत,
फिर हिम नग-प्रति ध्वनि-सा विराग,
जगमगी जवनिका के जग में—
नेपथ्य न क्यों निःसार हुआ।

काले बादल, रजनी काली।
इस जी की वह कलुष-कालिमा कहाँ छिपी है आली ?

कल-कल यह करुणा बहती है—
मानस मेरा चञ्चल कर,
ये लहरें रोको क्षण भर,
मेरी व्यथा कथा कहती है—
'वह दिन था, सुन्दर प्रभात था और उषा की लाली !'
अब यह रजनी काली।

आहें ये उमड़ी आती हैं
देखो बहती हैं झर-झर,
द्वार बन्द कर लो क्षण भर
मुग्ध भावनायें गाती हैं—
'फिर वह सन्ध्या भी आयी थी लेकर अपनी लाली !'
फिर वह रजनी काली।

इन श्वासों पर भार बड़ा है,
इन प्राणों में है तड़पन,
सोने दो इनको इस क्षण,
यह जीवन का शाप पड़ा है—
'उस प्रभात-सन्ध्या ने फिर सपने की राह सम्हाली !'
वह थी रजनी काली !

आज पुतलियों पर उतरी है—
ना जाने यह किसकी छवि,
सजल कल्पना वाले कवि,
किस अशेष की चाह भरी है,
पलक-झलक में उड़ ना जाये यह मूरत मतवाली।
होगी रजनी काली।

सजनि, जो मैं

सजनि, जो मैं यह सुन पाती—
वे वसन्त-से मदमाते हैं,
द्रुम-दल-सी आशायें उनके चरणों में बिखराती।
सजनि, जो मैं यह सुन पाती।

पिक गाती—पिक के सँग गाती,
मधुपों का गुञ्जन भर लाती,
बन-मञ्जरियों-सी रसमाती,
लुटती, मैं लुट जाती उनको मधुवन में ले आती।
सजनि, जो मै यह सुन पाती।

वे नव-शशि से शरमाते हैं।
अमा निशा-सी ओढ श्याम चादर मैं ही छिप जाती,
सजनि, जो मैं यह सुन पाती।
पल-पल झाँक-झाँक कर जाती,
पग-पग दीप सँजोकर लाती,
मैं यह सूनापन भर पाती,
उन्हें किसी दिन जो आँगन में हँसते देख सिहाती।
सजनि, जो मैं यह सुन पाती।

सुन्दर क्षण खोता जाता क्यों ?

१

सुन्दर क्षण खोता जाता क्यों इस ममता से मोहित पथ पर ?
इति की ओर दौड़ता है पर फिर-फिर रह जाता क्यों अथ पर ?
दोपहरी की निभृत क्रोड़ में छाया का सम्मोह लिये क्यों ?
और साथ में जलती आहों का जागृत विद्रोह लिये यों।
जी में शूल चुभे तो, पथ के—
काँटों का संकट क्या राही।
तू भर लाया आग, तुझे यह—
तपन बनेगी शीतलता ही।

२

हरी डाल के पंछी का मीठा गाना तू भी गाता चल।
फूलों के सँग तू भी अपने अश्रुकणों को बरसाता चल।
कहीं दूर बैठी आशा तक प्रतिध्वनि पहुँचा दे पुकार की।
भर ले आखों में छवि तू उस मृदु ज्योतित प्रिय उटज-द्वार की।
इस पथ का कण-कण उस—
आँगन की सीमा से परिचित राही।
दूर दूर लगता है घर
सचमुच आखों का छल ऐसा ही।

३

मत उपहारों की चिन्ता कर, सोच न तू क्या धन लाया है।
यही दिखा देना दुनिया से तू प्यासा जीवन लाया है।
एक मरोर, एक ठडी-सी सास, एक आसू का कण बस।
दरद भरों की यही कमाई, रहा यही तो उनका सरवस।

लुटा चला लालसा और—
अभिलाषा ही जब जग में राही।
मस्त फकीरों का हिसाब,
तो है उनकी दिल की दुनिया ही।

४

विस्मृति का वह छोर आज स्मृति के अंचल से बाँध सम्हलकर।
विवश बना आया था तू, जाता भी तो है मचल-मचल कर।
अभिमानी! सूनी-सूनी ही रही कहानी क्यों इस मन की?
रूठी-रूठी ही भागी क्यों छलना-सी छाया इस तन की?
प्रिय का भेद छिपा ले कुछ तो
खुले हाथ जब चलना राही।
यह न हो कि फिर कह दे तू ही—
सब कुछ था पर सपना-सा ही।

प्रेम का बन्दी न बन

१

देख, वह पंछी कि पथ-पद-चिह्न भी जिसने न छोड़े,
देख, वह छाया कि रज-कण भी न जिसके संग दौड़े,
देख, हँसती तारिका जो शून्य से सम्बन्ध जोड़े,
देख तो, वह बूँद जिसने सिन्धु के भी मान मोड़े,
तू न खिंच उस ओर अपनी साधना का ध्यान रख ले।
प्रेम का बन्दी न बन प्रिय-बन्धनों का मान रख ले।

२

क्षुब्ध पयनिधि की तपन पर मेदिनी मल्लार गाती,
छीन नभ का मुक्त-वैभव दामिनी शृंगार पाती,
गेह-हीना हो तरंगिनि सिन्धु का सम्भार लाती,
यह लहर लय के लिये इस पार से उस पार जाती,
इस अँधेरे चित्रपट पर ही कला का ज्ञान रख ले।
वीचि मत बन विकल जीवन की व्यथा का दान रख ले।

३

गीत विहगों के क्षितिज की गोद भरते जा रहे हैं,
सान्ध्य किरणों से सुमन के राग झरते जा रहे हैं,
देख, ये उडु-पान्थ भी नभ-सिन्धु तरते जा रहे हैं,
कौन भूला है कि ये सब भूल करते जा रहे हैं,
लौ जगी है प्राण! तो निज नेह का सम्मान रख ले।
मत शलभ बन दीप-ज्वाला का प्रकट अभिमान रख ले।

४

शूल हृत्तल में समेटे, हास सरसिज में खिलाया,
पर रसोर्म्मिल मुग्ध सरसी ने न जीवन प्यार पाया,

छू न पायी पर मुकुल का मान छाती में समाया,
था इसी उन्माद का सन्देश उद्धव ने सुनाया,
ठहर, यमुना के पुलिन का स्पर्श-पुलकित ध्यान रख ले।
मत मधुप बन कमल-पाँखों की अलस मुसकान रख ले।

५

'पी कहाँ है' पूछ मत रे! 'तू कहाँ है' यह बता दे,
पीउ के पगले! पिया को गेह का भी तो पता दे,
रागिनी तेरी, न क्यों तू ही स्वरों का क्रम लगा दे,
पर सम्हल, मल्लार पर ना भूल दीपक राग गा दे,
शून्य पर ओ शब्द-बेधी! अग्नि-शर-संधान रख ले।
तू न बन चातक जलद की प्यास का अरमान रख ले।

६

प्राण! तेरी हूल ने क्या फूल से सन्देश पाये,
भूल-स्वर-संकेत पथ जो कंटकों के देस छाये,
बावरी! इस आगमन पर कौन क्या परतीत लाये,
जो बिछलती याद आयी, जो मचलते गीत आये,
रंगशाला में सहज नेपथ्य का सुनसान रख ले।
पिक न बन! मधुमास के शृंगार की पहिचान रख ले।

७

प्राण ही के साथ आयी मृत्यु हो इसकी सहेली,
इस जरा से अग्नि-कण पर ही अमर की शांति खेली,
यह विमूर्च्छन ही लिये है सृष्टि की सुषमा नवेली,
रवि-किरण लिखती सदा ही श्याम पट पर यह पहेली,

बूझना है भेद तो कुछ सूझ का सामान रख ले।
तू न बन मस्ती विमूर्छित ख्यालियों का ज्ञान रख ले।

८

दे रहे जीवन-मरण दोनों निमन्त्रण एक ही क्षण,
पथ-विपथ दोनों लिये हैं देहरी का एक ही क्षण,
तृप्ति-तृष्णा चूमती हैं पलक तेरे एक ही क्षण,
मान तेरा बन रहा है प्राण ! पाहुन एक ही क्षण,
अब जिधर चाहे तुला पर प्रेम का परिमाण रख ले।
तू न बन आखेट आँखों की चुभन अनजान रख ले।

तू जाग पहरुआ

१

तू जाग पहरुआ ! जाग रे।
प्रियतम निकट नहीं है मेरे,
घन तम मोह मुझे है घेरे,
अभिशापित सूने में मैंने—
हैं अपने वरदान बखेरे।
भय है मेरा चोर न चुप-चुप—
छल कर जाये भाग रे!
तू जाग पहरुआ, जाग रे!

२

रोक रही—मन ना रो पाये,
तू भी कहीं न चुप हो जाये,
जो सकेतहीन खँडहर का—
यह भी पता कहीं खो जाये,
मुझे मिटा दे ना सूने में,
मेरा ही अनुराग रे!
तू जाग पहरुआ, जाग रे!

३

तू पुकार रे! देख न सपना,
मैं ही देखूँगी दुख अपना,
तेरी वाणी का प्रसाद तो—
पा न सकेगी मेरी रसना,
जीवन है कर्तव्य तुझे प्रिय,
मुझे वही है त्याग रे,
तू जाग पहरुआ, जाग रे।

४

कह दे उस प्यासे विहान से,
दूर रहे तम-गरल-पान से,
मुझे न आये अभी रुलाने,
कह दे कह दे किरण-गान से,
एक आह भी कहीं छू गयी—
बरस पड़ेगी आग रे!
तू जाग पहरुआ, जाग रे!

किस कवि ने

किस कवि ने यह गान रचा है ?
कौन शब्द सो गये कि जो यह—
अन्तिम चरण-विधान बचा है ?

दीप बचा है सूनी बाती,
देह बची है सूनी छाती,
कौन मरम बच गया कि लौटी—
यों संकेत-हीन-सी पाती,
इन प्राणों की ओट प्रलय-सा,
अब किसका अरमान बचा है ?

सभी जा चुके झूम-झूम कर
प्रिय-प्रेयसि मुख चूम-चूम कर !
मैं ही क्यों फिर-फिर आती हूँ
द्वार-देहरी घूम-घूम कर ?
इन पलकों की ओट अलख-सा
अब किसका महमान बचा है ?

अनिल-अनल-जल-धार दे चुका,
निर्दय वज्र-प्रहार दे चुका,
यह असीम आकाश भूमि को—
सीमित उपसंहार दे चुका,
मैं न जिसे पा सकी हृदय में,
वह किसका प्रतिदान बचा है ?

क्या रख छोड़ा—सब कुछ भूली,
प्यालों का रँग, कर की तूली,
नयन खिंचे-से अधर हँसे-से—
बोले—किसकी छाया छू ली?
फिर भी जो रह गया मर्म बन,
वह किसका अनुमान बचा है?

मिला निशा से जो प्रभात बन,
और प्रात से मिला रात बन,
मिला अश्रु से मधुर हास बन,
और हास से अश्रुपात बन,
मुझे मरण बन मिलने आया,
यह किसका वरदान बचा है?

मेरा स्वर सजनि !

मेरा स्वर सजनि, न सो पाया !

वीणा सोयी, वादक सोया,
रागों का रस मादक सोया,
सो गयी साध प्यासे मन की,
रूठा-रीझा गायक सोया,
मैंने गाया—जग ने गाया—
फिर भी न गीत वह हो पाया।

आहें थीं किन्तु पुकार न थी,
था मान किन्तु मनुहार न थी,
मैं क्या कहती—कितना कहती,
एकाकी थी—संसार न थी !
मैं ही रोयी इस बार—
दर्द मेरा कैदी ना रो पाया !

संसार बनाकर भी देखा,
संसार मिटाकर भी देखा,
क्या कहूँ कि मैं कितनी पगली—
खुद खेल दिखाकर भी देखा,
सूना-सूना-सा श्वास किन्तु—
विश्वास न अपना खो पाया !

जीवन समेटने चली—थकी,
मैं एक लहर भी ले न सकी,
फिर-फिर आयी हूँ लौट यहीं,
उस तट तक तरिणी खे न सकी,
अब उधर पहुँच पाना कैसा—
सदेस वहाँ से क्यों आया।

मैंने तो चित्र उतार लिया,
था निराकार, साकार किया,
तूफ़ान आज मिटने आया,
मस्ती ने खूब विचार किया,
वह गया महासागर पर—
वह रेखा न एक भी धो पाया।

॥।

जीवन की प्यासी

जीवन की प्यासी एक लहर !
तृष्णा का पहला झोंका खा—
व्याकुल दौड़ी है इधर-उधर !
बढ़ने की कौन कथा, क्षण में—
उन्माद गया है यहीं बिखर !
फिर भी यह प्यासी प्रथम लहर !

यह तरल ज्वाल-माला-सी
उठती है समेटने को उमंग !
क्या तृप्ति मिली ! अपना ही—
तन दे रही आज खो रही संग !
फिर भी भूखी जीवन-तरंग !

ले दौड़ी है करुणा-कण यह
खो बैठी है जीवन-विवेक !
पगली की एक रागिनी, इसके—
करुण-गीत की एक टेक !
फिर भी सशोक कल्लोल एक !

उन्मत्त पुलिन की ओर आप ही—
खोज रही बन्धन पगली !
प्रस्तर-खण्डों से प्यार ! हार थी—
निश्चय ही, यह गई छली !
फिर भी छल लेकर ऊर्मि चली !

अनुपल अन्वेषण में दौड़ी
क्या जाने क्या 'इति' थी'अथ' था !
थी भार-भ्रमित जीवन में यह
पूरी न कर सकी एक कथा !
फिर भी यह जीवित विन्चि-व्यथा !

अब डूबी-डूबी सी आती
सब भूल गयी है ओर-छोर !
सब कुछ समेटने चली, किन्तु—
धर सकी न निज जीवन बटोर !
फिर भी यह है अन्तिम हिलोर !

मौन-मूर्छित जो न रखती आज मानस की विकलता,
रवि-किरण रँगती तरंगिणि ! तूलिका की चाल बनकर !
आह ! बन्धन-मर्म ही जो जानती उन्मुक्त पीड़ा,
आज शतदल ही सजाती सजग साध मृणाल बनकर !
क्षुब्ध सागर-सा हृदय जो प्राण-पुलिनों पर बिखरता,
आज जीवन-कलुष भी बिकता अमोल प्रवाल बनकर !
और प्रिय-रस-भेद जो रस प्यास ही पहिचान पाती,
आज मुक्ताहल लुटाती शुक्ति सी कंगाल बनकर !
क्यों न ले पायी अरी ! तू सरस अन्तस्तल विमलता,
आ गयी जो आज जीवन-भार-सी शैवाल बनकर

जो तुम मुझे जगाने आये

१

जो तुम मुझे जगाने आये—
ये स्वर्गंगा के जल कण
इस जगती में हिम-कण हो छाये,
ये पल्लव असंख्य कर-से—
मेरी पलकों को धोने आये !
जो तुम मुझे जगाने आये !
तुम्हें देख रजनी सकुची सी,
उषा हुई अनुराग रँगी सी,
आशाओं में भरी हँसी-सी
लजवन्ती-सी बिंदिया मेरी
बीतराग-से नयन बनाये !

२

जो तुम मुझे जगाने आये—
ये नभ के तारे इस उपवन—
में फूलों की छवि भर लाये,
प्रिय प्राची ने कुसुम-रँगीले—
दृगपाथ पर पाँवड़े बिछाये !
जो तुम मुझे जगाने आये !
विरुझे विटप लतायें झूलीं,
द्रुम दल-अभिलाषायें फूलीं,
मन भूला ममतायें भूलीं,
भावी और अतीत भुलाया
वर्तमान ने मान मनाये !

३

जो तुम मुझे जगाने आये—
सुरबालायें वनीं कोकिलायें
किन्नर से कलरव भाये
अखिल जागरण को अनन्त में
महाशून्य तक स्वर पहुँचाये!
जो तुम मुझे जगाने आये!
प्रगट हुआ नव चेतन-जीवन,
जल-थल-नभ-परिपूरित मधुस्वन—
'जाग-जाग रे जाग हृदय-धन!'
फूट पड़ी निर्झरिणी जी की
कोटि-कोटि अस्तित्व बहाये!

ये आँखें

ये आँखें प्यारी हैं—प्रियतर है मुझको इनकी नादानी !
सखि ! इनकी क्या कहूँ कहानी !

मैं अपनी-अपनी कहती हूँ
ये करतीं अपनी मनमानी,
मैं तो आप अगम बहती हूँ—
ये भर-भर लाती हैं पानी !
ये किसके मन सजनि ! समानी ?

दूर-दूर कहते-कहते भी—
दूर रहा है इनसे कुछ क्या ?
पास-पास रहते-रहते भी
पास रहा है इनके कुछ क्या ?
जगत-भिखारिन—जग दीवानी !

बन साकार पुतलियों में ये—
निराकार पलकों पर छा लें,
एक छली हैं—छलियों में तो—
मचल पड़ें, पर भेद बचा लें !
कौन करे इनकी महमानी ?

मैं चाहूँ छिप-छिप जाऊँ तो—
शून्य कक्ष में मुझे बता दें !
खोज-खोज कर रह जाऊँ तो—
ये निर्मम क्या मुझे पता दें !
क्यों मिलती ऐसों को बानी ?

अग-जग-छवि-छाया भरकर ये
मन की दुनियाँ अलग बनातीं;
फिर अपना ही गेह छोड़ कर—
उसे देखती ही रह जातीं!

ये ही बनती मौत-निशानी!
सखि! इनकी क्या कहूँ कहानी!

|||

अपने अचल का छोर उठा!

मैं दीपक हूँ—वढ जाने दे,
जीवन की साध जगाने दे,
इन अनिल झकोरों को प्रेयसि!
मुझसे अनुराग वढाने दे,
जीवन नभ काल-अमा न वढ़ा, तू सजग-स्नेह की कोर उठा।
अपने अंचल का छोर उठा॥

क्यों डोल रहा करतल-भूतल?
अम्बर क्यों झुकता है पल-पल?
जलते सनेह की डोरी पर—
क्यों भूल रहा है अन्तस्तल?
यों पग-पग ना निश्वास दवा, तू जलती एक मरोर उठा।
अपने अंचल का छोर उठा॥

मिट्टी ही की हूँ लिये देह,
पर आग वन गया है सनेह,
अव जलना ही जलना है री!
सूनी समाधि हो या कि गेह,
पथ का न भिखारी मुझे वना तू, अगुलियों के पोर उठा।
अपने अचल का छोर उठा॥

क्या पाया री! यों छिपा-छिपा?
अपने ही हाथों मिटा-मिटा,
ले चला त्राण ही प्राण हन्त,
मिल गयी मुक्ति पथ दिखा-दिखा,
यह देख कि अव मै वुझा-वुझा, वह देख विश्व का भोर उठा,
अव क्या अंचल का छोर उठा,

इक्कावी

यह उनकी ही पाती

यह उनकी ही पाती !
अलस साँझ पुलकित पलकों में जिनकी छवि भर जाती।
यह उनकी ही पाती।
जिन्हें रिझाने ही को रजनी रजत-हास-हुलसाती।
पद पखारने को सूने मे मंदाकिनी बहाती।
यह उनकी ही पाती !
जिनका नव-अनुराग उषा प्रतिदिन चित्रित कर जाती।
जिन पर उमग प्राण में विहगिनि मधुर प्रभाती गाती।
यह उनकी ही पाती !
शून्य रेणु-पथ यह जल-लहरी चूम-चूम बिलखाती।
चरण चिन्ह जिनके छूने को आती फिर-फिर जाती।
यह उनकी ही पाती !
मृदु-लतिका उपवन में बदनवार बनी बँध जाती।
यह फुलवारी जिनके स्वागत में लुटने को माती।
यह उनकी ही पाती !
मैं बैठी देखूँ कब, किस क्षण, पाऊँ जीवन-पाती।
आज सँदेसा तो ले आयी है प्रीतम की पाती।
यह उनकी ही पाती !

मैंने कब प्रिय का पथ पाया।
सदा जोगिया के स्वर में ही तो अनुराग मनाया।
नत-उन्मद चितवन छू-छू कर रही किसी की छाया।
जब की झूम अंगारों पर ज्वाला ने नृत्य दिखाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

१

भोली भूली-सी रसाल नव मंजरियों पर माती।
पिक निज स्वर पर रीझी पिय की टेर कहाँ सुन पाती।
तितली के चुम्बन की तृष्णा है गुलाब पर राती।
युगल पाँखियों की आतुरता डाल-डाल इतराती।
एक गीत मधु-रस-सजनी ने क्या सीखा? क्या गाती?
अपराधिनी कली शूलों का कारागार सजाती।
शोभा सुकुमारी को वन ने अपना अतिथि बनाया।
जब कि सिसकती थी कुटिया में सूखी फीकी काया।
ना जानूँ इस स्नेह-दीप ने किसका दरद जगाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

२

यह दरिद्र—यह शून्य धरा पर इतना स्वर्ण लुटाये।
कलुष-तमिस्र अशेष मधुर ज्योत्स्ना को कंठ लगाये।
रवि की यौवन-पुलक शशि-मुखी राका पर छवि लाये।
शशि का यौवन-भार उषा की आँखों में शरमाये।
कौन कहेगा उनकी—जिनको जग पहिचान न पाये।
तारे हैं—पर तरने वाले आग भरे ही आये।

अरुण कपोलों से प्राची ने आँगन में मुसकाया।
जब कि थकान भरे आँखों में एक अपरिचित आया।
फिर भी क्यों—किसका सँदेस पंखी-प्रभात ले आया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

३

सरिता ने द्रुत गति छंदों में छेड़ी एक कहानी।
सजग साधनाशील हो गया मुक्ताओं का पानी।
लहरों ने प्रताड़ना झेली बना भँवर अभिमानी।
फिर भी देखो तो बहती है यह करुणा दीवानी।
जल-कण क्या यों ही बिखरेंगे, जिनने धरती छानी।
यह उभार किस घाट रहेगा—राह न है पहिचानी!
वरण कर रहो है जड़ता को इस जीवन की माया।
जब कि प्राण-संस्पर्श न मैंने किसी हृदय में पाया।
कोई मुझे बता दे क्या है रूप और क्या छाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

४

उदधि ऊर्मियों में अधीर है प्रतियोगी अम्बर का।
उधर पहुँचकर भी समीर से सुनता हाल इधर का।
दिया दामिनी ने सँदेस—वह गीत वज्र के स्वर का।
चला बटोही बनकर फिर अभ्यागत शून्य प्रहर का।
जीवन का यह विकल विवर्तन लिये शाप किस वर का।
किस प्रतीति का ओर छोर हो गया माप इस घर का!

निष्ठुर गायक ने प्राणों में मेघ-मलार जगाया।
जब कि हृदय की एक साध ने यह अम्बार लगाया।
तृष्णा के यौवन ने कितना खोया कितना पाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

५

एक अपरिचित पथ का रज-कण पर चिरपरिचित मन का—
बोला—कितनी बार सुना है मैंने गीत सृजन का।
मुझे छू गया है कब-कब क्या कहूँ शाप यौवन का।
मैंने पहिचाना है गति में माप मूक धधकन का।
कितनी आँखों में देखा है रूप छलकते क्षण का।
यहीं पा चुका हूँ मैं दर्शन जीवन और मरण का।
आज उठा ले चली मुझे है किसी शून्य की माया।
जब कि इसी पथ पर इस क्षण ही एक अपरिचित आया।
इसी भाँति मेरा चिर परिचित अपना हुआ पराया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

६

पागलपन! मैंने क्यों देखा—क्या देखा दरपन में?
क्या पाना था मुझे अरे! प्राणों से सूने तन में?
झाँक रही थी कौन? कौन उन आँखों के निर्जन में?
छिपा सका हूँ मैं क्या उसको अपने ही अरपन में?
तब क्या उसकी आँखों के दो बाल मूक बधन में—
बने रहेंगे, इसी साध के चिरमूर्छित अर्चन में?

अब माखन लेकर आयी है यह गोकुल की जाया।
जब कि किसी ममता ने उसका माखन-चोर चुराया।
सब कुछ पाकर भी सब कुछ खोना ही प्रेम कहाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया !

७

किस सीमा पर सजग पाथ ! मेरी निर्वासित आशा ?
किस नभ के नीचे समझेगा कोई मेरी भाषा ?
शब्द मूक ? सकेतों में भी केवल एक निराशा ?
सपने की आँखों ने फिर-फिर देखा वही तमाशा।
किसी देश के राही ! देना यह संदेस जरा सा।
वहाँ प्रेम की की जाती है किस प्रकार परिभाषा !
इस मन ने—उस मन ने, किस-किसने न क्या न समझाया।
जब कि अनजान हिये ने अपना भरम गँवाया।
इन्द्र धनुष के अलख तीर ने किसे अहेर बनाया ?
मैंने कब प्रिय का पथ पाया !

८

मेघ यहीं पर बरस पड़े—यह किसकी तृष्णा बोली ?
विद्यु-दीप की ज्योति लिये यह किसने प्रीति सँजोली ?
केकी के नर्तन पर किसकी साध नाचती भोली ?
किसका मन्थर सर्जन भरता अरमानों की झोली ?
चहक-चहक स्वच्छंद किलोलों मे यह किसकी टोली—
सोये मन को जगा-जगा कर करती सहज ठठोली ?

अपनी सीमा के बंधन ने क्या विस्तार दिखाया।
जब कि कुहुकिनी ने पागलपन को भी प्यार सिखाया।
अनदेखे अनजाने किसने अलख अपरिचित पाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

९

सब से पूछ पूछ हारा मैं—सब ने कहा सहज है।
यह है राधा, बँसुरी का स्वर, साँवरिया का ब्रज है।
देखो तो यह यमुना तट है, यह गलियों की रज है।
यह देखो तो रुनझुन-छुनछुन आती प्रीति सलज है।
यहीं कहीं होगा वह गोधन, उसकी बाँकी धज है।
जसुदा यहीं सदा कहती थी मोहन महा निलज है।
जग की आतुरता ने आखिर विरह-गीत भी गाया।
जब कि किसी उद्धव ने अपना अलख मन्त्र समझाया।
सहज-सहज पानेवालों ने कितना सहज गवाँया।
मैंने कब प्रिय पत्र का पाया!

१०

ये आँखें हैं, इनमें मद है—यह है रूप सलोना।
इन अधरों पर रस प्यासा है—यह है छवि का सोना।
यह पद-ध्वनि नीरव-श्वासों को मार रही है टोना।
यही लाज तो जला रही है जी का कोना कोना।
इस तरल-स्वर पर ना जाने किसे पड़े क्या खोना।
और इसी मन में रहता है एक प्यार अन होना।

जब किरण-छोरों में सन्ध्या ने अनुराग बंधाया।
इस जगमग झाँकी ने मेरा प्रियतम कहीं छिपाया।
छल पर मुझे लुभानेवाला मेरा प्रिय न कहाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

११

तप्त रेणु-से विकल भाव पथ की दूर्वादल-आशा।
तेरी इस सुकुमार हँसी पर मिटा बटोही प्यासा।
एक फूल नीलम-सा जगती की अचिन्त्य सुषमा-सा।
दो दल के पखों पर उड़ने चला किन्तु भटका-सा—
प्रेम-गीत लिख रहा पँखुड़ियों पर उन्माद भरा-सा!
किरणों के स्वर मौन किन्तु प्राणों में रस बरसा-सा।
इसी प्रमद परितृष्ण छोर ने सुख का जगत बसाया।
जब कि अकेली-सी चितवन ने अपना स्वर्ग छिपाया।
पाथ! ठहर, तुझ-सा ही कोई कभी यहाँ था आया!
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

१२

साँझ—शून्य पथ की भिखारिणी—आशा-दीप जगाये—
चली छेड़कर एक गीत, तम की झोली लटकाये।
ना जाने क्यों, किसने उस पर पारिजात बरसाये।
कब उसने चाहा था कोई उसका दरद दुखाये!
फिर भी उसके ध्रुव ने लघु-गति-उड्ड अंतरे उठाये।
इस उन्मुक्त शून्य को कितने मादक गीत सुनाये।

हृदय-चेतना ध्वनित हो उठी जीवन ने रस पाया।
जब कि साँझ के कवि का शशि-सा भाव-गीत अलसाया।
यह समीर-नर्तन उस पद-ध्वनि पर फिर-फिर सकुचाया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

१३

इस समीर पर याद किसी की चुप-चुप गयी ठहर है।
अगिन अतिथियों ने पूछा आकर 'वह' गई किधर है।
टुट्-टुट् विहगी बोली—समझा मुझे मिला उत्तर है।
एक साँस टूटी थी उसकी—वही बनी पत्थर है।
एक साँस! पत्थर का टुकड़ा! जीवन को मधुतर है!
यह हिम-शैल! कौन जाने कितनी श्वासों का वर है।
नभ से टूट एक तारे ने भी पथ-चिह्न बताया।
जब कि साँस लेकर पंथी ने कहा प्राण! अब आया।
तो क्या इन टूटी सांसों ने भी अटूट को पाया?
मैंने कब प्रिय का पथ पाया!

१४

अंधकार! तेरी प्रतीति में सब कुछ हुआ भरम है।
फिर भी तूने क्या जगती का छिपा न रखा मरम है?
एक रंग, तूने न सिखाया यहा भेद का क्रम है।
वह प्रकाश का 'विलग' हो गया 'एक'—कौन सक्षम है?
दीप-राग मैं क्या छेड़ूँ जब याद नहीं सरगम है।
स्वर कोई हो—तेरे लय पर हो जाता वह सम है।

नवासी

मै हारा—मैंने क्यों तुझ में अपना 'आप' छिपाया।
जब कि हँस रही थी प्रकाश सी तेरे पथ की छाया।
ओ अजान राही ! तू घर चल किधर भटक कर आया।
मैंने कब प्रिय का पथ पाया !

१५

ओ निशीथ के सजग पहरुआ ! मुझे न आज सताना।
मेरी चकित साधना से अब कैसा परिचय पाना।
राहगीर मैं हूँ—पर मेरा कहीं न पता ठिकाना।
तेरे ये दो बोल सुने थे, समझा, पथ पहिचाना।
अब ? अब तो मैं छोड़ चुका हूँ अपना अलख जगाना।
इस अँधियारे में दो पग हैं क्या आना क्या जाना।
दूर-दूर के वासी कहते होंगे—कोई आया—
जब कि किसी ने इस दूरी पर एक श्वास दुहराया।
क्यों मेरी सूनी ममता पर अब अटकी है काया ?
मैंने कब प्रिय का पथ पाया !

कौन सा परिताप—?

१

कौन-सा परिताप लेकर तू गया था ?
क्योंकि उनके पास—
तेरी चिन्तनाएँ,
जाग्रत प्रार्थनाएँ,
दुःख - उत्पीड़न - भरी मार्मिक कथाएँ
था सभी कुछ, किन्तु
जैसे सुमन सूखे - म्लान
तेरे शब्द भी निष्प्राण
थे पड़े ; निज ध्येय प्रभु की प्रेरणा से हीन,
आत्म-गौरव से भरे पर, आत्म-ज्ञान विहीन,
था न करुणा का तभी उनमें जरा आभास।
क्यों न निज अनुताप ही लेकर गया था।
कौन - सा परिताप लेकर तू गया था।

२

दिन गया, पर रात भी तो जा रही है!
और कितना मौन—
कब तक प्रतीक्षा,
कितनी प्रतीक्षा,
दे रहे हो क्या मरण की हीन दीक्षा
सब सही यह, किन्तु
सुनकर प्राण का चीत्कार
तुम हो दूर, फिर उस पार।
क्या इसी से कर रखा है वह तमोमय देश।
मैं न पहिचानूँ तुम्हारा। कौन सा है वेश।

क्या तुम्हारे स्पर्श से भी प्राण कम्पित हों न
मैं सहूँगा पर तुम्हारी बात भी तो जा रही है।
दिन गया, पर रात भी तो जा रही है।

३

आज अन्तर की मधुरता भी गरल - सी।
तुम किये हो मान—
कर दिया कैदी,
देन ऐसी दी,
मैं मनाऊँगा न तुम रूठो भले ही।
खीझ ही लो किन्तु
मेरे मौन मेरी शक्ति—
की केवल व्यथा अभिव्यक्ति ?
सुमन का भी मौन जीवन में हँसा है प्राण
पा सकूँगा क्या तुम्हारी एक भी मुसकान
क्या न जीवन मे मिलेगा यह तनिक सा प्रान ?
यह विषमता भी तभी होगी सरल - सी।
आज अन्तर की मधुरता भी गरल - सी।

४

तेज यह तेरा। हुआ यद्यपि सवेरा ?
क्या मरण का स्वाद।
पाँच एकाकी,
मार्ग है बाकी,
झाँकती है अन्त की रवि संग झाँकी।
मिट गया वह, किन्तु
होगा फिर नया आकाश
चमकेगा नया विश्वास,

"साहसी नक्षत्र! जब तक था वही थी शान !"
अमर जीवन का न इससे श्रेष्ठ और प्रमाण।
और कुछ वह था न, थी केवल तुम्हारी याद
सब तुम्हारे अंक में लेते बसेरा।
तेज यह तेरा हुआ यद्यपि सबेरा।

५

सुमन का अवसाद कोई जान पाया ?
गा रहे कवि गान—
सुरभि-मद - रत-से,
रंग शत - शत - से,
रूप के प्यासे जगत से प्राण हत-से,
जग सुशोभन, किन्तु—
उससे भी उपेक्षित ! धूल।
स्मृति है वृंत अथवा शूल।
वह कला की भूख का आखेट है अनजान!
क्या हृदय की भूख उसकी जग सका पहिचान ?
रंग में, स्वर में युगों से यह व्यथा है क्या न ?
हँस रहा है फूल उसने ज्ञान पाया।
सुमन का अवसाद कोई जान पाया ?

६

आज ये लहरें मिटाकर ही रहेंगी ?
क्योंकि इनका ढंग—
जैसे अग्नि-ज्वाला,
अथवा तरल हाला,

तुहिन-शीतल स्पर्श कर युत काल काला
दिख रहा है, किन्तु
विदा का प्रिय कितना प्यार !
प्रियतर नाश का श्रृंगार !
प्रभु ! स्वनिर्मित की विकृति की लाज सहज समेट !
किस तरह हैं दे रहे फिर पूर्णता को भेंट !
है वही झाँकी, वही मस्ती, वही है रंग !
किस तरह, जीवन छिपाकर ये रहेंगी !
आज ये लहरें मिटाकर ही रहेंगी !

मुझे न प्रेम कहानी आई

मुझे न प्रेम कहानी आई।
मुझे न लाज कि मेरे दारिद पर पाहुन-पद-गति सकुचाई ॥
मेरी याद सदा भूली-सी कभी न सुधि-सपने भर लाई।
वहा बरसने वाली आँखों में बसने की साध समाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

यह मैं किससे कहूँ कि मेरी सासे बिस की फूँकी ?
यह मैं कैसे सहूँ कि मेरी अभिलाषाएँ चूँकी ?
मैं विहीनताओं का मानी पूरनता पर रीझा।
क्यों मेरी परिमिति के सुख पर अपरिमेय है खीझा ?
क्यों मेरी भावना-कला ने पखों का पथ खींचा ?
आंसू की दो बूँदों ने क्यों ज्वाला का पथ सींचा ?
श्वासों में छिपकर भी क्यों यह मीति सहज मुसकाई ?
ओछे घर-सा छलक पड़ा मन क्या जीवन गहराई ?
दृष्टि छू चुकी जिसे कह वह छवि जी में छिप पाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

२

प्रिय ! मैं किसे कहूँ प्रिय ? जिसको देख रही हैं आखें ?
क्या एकाधिकार ले ये ही प्राणों का रस चाखें ?
प्रकृत आदि कवि ने थी देखी शर की लोहित धारा !
क्या वियोग ही बना रहा है सदा प्रीति की कारा ?
सीता की ममता ने था धरती का हीतल चीरा।
मूर्तिमान करुणा होकर ही क्या आई थी मीरा ?
मानव ने बिछोह के स्वर में बँसरी सदा बजाई।
रक्त भरे आंसू ही उनको देते रहे बिदाई ॥

फिर कवि की आखों में कैसी छाई यह अरुणाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

३

यह जग-जीवन मेघ बना था दूत वियोगी का ही।
अपनी ही अन्तर्ज्वाला विद्रोह लिये अपना ही॥
आंसू से सींचा दुनिया ने जीवन-उपवन अपना।
किन्तु देखता था कवि अलका के पथ पर सुख-सपना॥
यही सोचता हूँ क्या मेरा प्रिय है इतना प्यासा।
स्वय मेघ भी जिसकी तृष्णा का है दूत जरा-सा॥
आह-आह ! जग के प्यासों ने तब भी चीख मचाई।
कविता में करुणा पर जीवन में कितनी निठुराई।
विप्रलब्ध ही बन भावुकता ने कल्पना जगाई।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

४

भ्रमर ! स्निग्ध पखुरिया जिसके महलों की दीवारें।
वह भी दूत बन गया पाकर प्रियतम की मनुहारें।
प्रिय-प्रवास पर श्वास खींचकर पवन रहा ठहरा सा।
कवि ने उसको भी सौंपा राधा का मन हहरा सा॥
तब भी क्या न बंदिनी की पत कारा में छिनती थी ?
जहा पवन पर भी पहरा था श्वासों की गिनती थी।
किस प्रिय के वियोग-मूर्च्छन पर उसकी गति अलसाई ?
घुँघराली अलकें बिखेर किस अञ्चल पर ललचाई ?
एक सास भी उस क्षण जग के जीवन में न समाई।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

५

सागर के असूझ अंतर में शुक्ति प्राण-रस पा ले।
आग भरे नभ से भी चातक स्वाँति-सुधा वरसा ले॥
सुधा चंद्र में और चंद्र भी साँपों का कैदी हो।
पर चकोर की चाह अमृत घट की भी चिर-भेदी हो॥
स्वयं वन श्री ही शकुन्तला का शृंगार सँवारे।
स्वर्ग किसी के लिये मेनका मृत्युलोक पर वारे॥
यौवन का विष-घूँट दे रहा यों प्रिय-प्रेम दुहाई।
शिव के काल-कूट पर भी हिम-शैल-सुता मुसकाई॥
कवि! तेरे मानव में प्रिय की कितनी पीर समाई?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

६

बुद्ध! कहीं इतिहासों में है कोई ऐसा पागल?
और आम्रपाली के मन-सा होगा कोई दुर्बल!
मरण वसुमती का जीवन बन क्षण-क्षण पर ढलता है।
किन्तु बुद्ध का मर्त्य अमरता को भी तो खलता है॥
पार्थिवता के कण को उसने था हिमगिरि-सा माना।
पर्वत-सा विश्वास प्रेम का किन्तु धूल-सा जाना॥
अब क्या देखूँ यशोधरा की उस क्षण की अँगड़ाई।
जिसने उसे जगाया, उसकी जीवन-साध सुलाई॥
आँखों में तसवीर कौन-सी उस क्षण की खिँच आई?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

७

मैं न कहूँगा यों विषाक्त है जग की प्रेम-कहानी।
किन्तु न मैं पहिचान चुका हूँ क्या है प्रेम-निशानी।

क्यों आँखें दौड़ी हैं युग-युग पथ के काँटे चुनने ?
क्यों कवि आया है यों मन का ताना-बाना बुनने ?
क्या कह दूँ कि कोकिला ने दो बोल अभी जो बोले —
वे अनन्त युग की भाषा का मर्म छिपाये डोले ?
मुझे ज्ञात है यदि पा जाऊँ इसकी कहीं सचाई।
तो कह दूँगा पागल ने ही थी यह सृष्टि बनाई ॥
रूप रँगी अभिलाषाओं पर रीझी है परछाँई।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

८

पत्थर के नीचे वृश्चिक सी याद जी रही जग में।
डसने वाली चाह पड़ी है अब भी सूने मग में ॥
अब भी क्रौञ्च मिथुन पर कोई व्याध तीर साधे है।
अब भी एक देवयानी कच का जीवन बाँधे है ॥
मन है वही, वही मानव है, वही मूक आकर्षण।
प्रेम ! प्रेम में वही हलाहल और वही मधु वर्षण ॥
वे ही स्वर-व्यंजन हैं श्वासों ने भाषा न बनाई।
किसने यमुना की लहरों में नई रागिनी गाई ॥
अधरों पर अभिव्यक्ति कौन-सी आज मूक रह पाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

९

मानव की आकांक्षा सचमुच रही सतत उन्मद है।
जो कुछ उससे परे वही उसका सौंदर्य सुखद है ॥
इसीलिये झिलमिल पर्दा यह रजनी का घूँघट है।
इसीलिये उसकी आँखों में लहराता वह तट है ॥

उसकी चिर अतृप्ति ने यों ही कल्पित अमृत पिया है।
यद्यपि इसी धरा पर मानव फिर-फिर मरा जिया है॥
यही प्यास दौड़ी स्वर्गंगा तक—फिर भू पर आई।
यही आग तपती है जीवन में जो प्रीति कहाई॥
इसी प्यास ने—इसी प्रीति ने अलख पुकार मचाई।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

१०

किसने कहा—पाप है, बोला कौन कि मगल-पथ है ?
वह 'इति' का है पाच इसे तो सतत आदि है, अथ' है॥
वह है तम का प्यासा—जिसने प्रेम पाप मय देखा।
प्रतिक्षण का आकर्षण इसका, प्रतिपल नूतन लेखा॥
पंछी की पुकार वह जिसने सुनी अनश्वर वानी।
अपने जी की धड़कन भी उससे न गई पहिचानी ?
क्या श्यामल वसुन्धरा ने गोदी में मृत्यु सुलाई ?
इन आँखों में सर्वनाश ही करता है पहुनाई ?
जीवन की डोरी मे अपने ही हाथों गाठ लगाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

११

निशि-अप्सरियाँ गगन-गवाक्षों से नीचे को झाँकी।
रवि-शशि ने वसुधा की छवियाँ मृदु-किरणों में आँकी॥
नीलाम्बर के छोर सहज इस भूतल पर लटके हैं।
मेघ वरस पड़ने को ज्यों-त्यों ऊपर को अटके हैं॥
खिचा आ रहा स्वर्ग प्रतिक्षण आशाओं का साधा।
तव किस सावरिया के रग में रँगी कौन-सी राधा ?

मानव ही ने विश्व शक्ति क्या गोदी में न खिलाई ?
क्या न स्वर्ग ने मनुज कल्पना की रंगीनी पाई ?
तब किस परिचय-हीन देश में पहुँच रही तरुणाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

१२

इधर सदा भू-हृदय चीर कर उठते द्रुम ऊपर को।
ये सुकुमार प्रसून देखते रहते सदा उधर को॥
पंछी की उड़ान में मानों उसी ओर को मन है।
शब्द शून्य में उड़ जाने को तज देता यह तन है॥
कुछ पा लेने को ये आँखें वहीं अटकने जातीं।
सपनों की लोरियाँ कल्पनाएँ पलकों में गातीं॥
न कुछ धूल भी सहज स्पर्श से उठने को ललचाई।
जला यहाँ का सब कुछ ज्वाला उसी पंथ पर धाई॥
किस मायावी की छलना इस चित्रपटी पर छाई ?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

१३

यह सब क्यों ? इसलिए कि बाहर एक अधूरापन है।
यह सुन्दरता कहीं छिपाये बैठी अपना मन है ?
यही खोज है और यही है अमित साधना सब की।
कण-कण से कवि पूछ रहा है बातें अबकी-तबकी॥
युग-युग का इतिहास बना है उसकी प्रेम-कहानी।
असम्पूर्णता भरती आयी उसके घट का पानी॥
उसके चिर-वियोग की पीड़ा दो आँखों ने पाई।
उसकी चिर अतृप्ति इस मन ने श्वासों में बिखराई॥

दीप-शिखा तूफानों पर वातायन से मुसकाई।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

१४

यों गंगा तट बैठ तृषित ने मंदाकिनी निहारी।
आग लगे जीवन ने नक्षत्रों पर बाँह पसारी॥
जसुदा ने मोहन के शैशव को था चंद्र गहाया।
हमने-तुमने सबने अपना-अपना प्रियतम पाया॥
भोलापन है और इसी में तुम चाहो तो भूलो।
बैठ कल्पना की डाली पर शशि किरणों से झूलो॥
किन्तु मिलेगी उजियाले में अपनी ही परछाईं।
यह भी चिह्न छोड़ बैठोगे अँधियारे की नाईं॥
निकट बुलाने वाली आँखें स्वयं दूर उठ धाईं।
मुझे न प्रेम कहानी आई।

१५

मेरे प्रिय! मैं किससे पूछूँ—कहाँ कौन बोलेगा?
कौन हृदय की धड़कन पर मेरी पीड़ा तोलेगा?
मेरे उच्छ्वासों को अब किसकी अनुभूति मिलेगी?
यह द्रुम त्यक्त कल्पना-कलिका कैसे हँसे खिलेगी?
आधीरात हो चुकी प्रियतम! गहरी अँधियारी है।
यह विस्मृति भी टूट न जाये क्योंकि वरण भारी है॥
तुमसे कभी न पूछूँगा यह—मैंने सौगंद खाई—
यही कि मेरे प्रियतम! बोलो—'किसने बाजी पाई'।
प्रेम जीतने वालों ने प्राणों की हार लगाई?
मुझे न प्रेम कहानी आई।

नाग-वंश—सम्भव ये, शशि-कुल-जात वे,
सदा-सुधा-पायक ये, सुधा-साक्षात् वे,
रवि-मान-रश्मि-मालिका से जग पड़ती
कमल-प्रभा ज्यों मोद मयी अभिलाषा सी,
त्यों ही रवि-राजचिह्न जिनका है उनकी—
कमल प्रभा हो क्यों न राज रानी स्वामिनी।
जीवन की मृदुता का छोर लिये आती है
उषा अनुरागिनी-सी। जगती की कामना—
फूल उठती है तव सुमनों के साथ ही।
और फिर सन्ध्या के सुहाग पर फूलती है
तारिकाओं में अतीत दिव्य-ज्योति झाँकी-सी,
यही दूसरा है छोर—दोनों बाँध लेते हैं
अनन्त-प्राण सृष्टि-साध। फूट पड़ती है—
जब नीड़-सीमा-देश पार करती हुई
एक परिचित-सी अपरिचित रसना,
तब तटिनी का उन्मेष इन लहरों में—
लास्य लिए चूमता है प्रतिध्वनि स्वर की।
तब किरणों के हिंडोले पड़ते हैं वहाँ,
जहाँ वृक्ष-राजियों की जड़-सी चपलता
खोजती है स्व-प्रतीति किसी अन्तराल में।
और उन झूलों पर गीत झूलते हैं—
जिनके विमूर्छन की गति अप्रतीति-सी,
लय-सा विलीन होता कम्पन है प्राणों का।
कौन-सा प्रभात जब सुमन ना खिलेंगे?
कौन-सा प्रभात जब वे नहीं मुरझते?

संध्या साक्षिणी-सी तभी एक-एक तारिका
बैठी है सम्हाले—यह भार-सा अशेष का।
किन्तु एक झाकती है शुचि सुकुमारता,
एक मृदु हास्य-रेखा खिचती गगन में,
एक नव पुलक-विलास सरिता में है
एक प्रिय राग फिर पंचम में गूंजता।
कौन गिनता है—गिनती के क्षण पाके भी ?
कौन रहता है—अमृतत्व, वरदान ले ?
कौन समझा है—जब काव्य इतना हुआ ?
कौन भरता है रग नभ ने दिखाये जो ?
यह जो चली है आज उठ किसी कक्ष से—
और भरती है जो अन्तरित मे अमूर्तता
भूमि पर भासमान, मूर्तिमान, प्राप्त-सी
दीप्त हो रही है उसी दीप्ति की विदेहता।
नव-नव किसलय—कोरक से विकीर्ण हो
बिखर पड़ा है हिय-भार क्या वसत का ?
जिसे चय करता है उमगित कलियों का चय,
जिसे खोजते विलुब्ध षट्पद भूले हैं,
किसी मानसी का प्राण वाही रस-कण जो—
भूल-सा गया है गन्ध वह के विलास मे—
उठ-उठ देखता है इस विस्तीर्णता को
जो न देख पाती सूक्ष्मता की परिव्याप्ति है!
कैसे भर आयी ससीम में असीमता
कैसे सम्पूर्णता अपूर्णता मे झाँकती है,
कैसे यह सूर्य, यह क्षितिज अनन्त सा,
असमीपता समीपता के अंक मे—

वैठ रहती है। वह तुहिन-तरलता
केन्द्र-विन्दु वनाती है शिव की समाधि का !
वही साध सजल स्फुलिंग हो विराम में
जग पड़ती है जगती की वासना-प्रिया !
एक चिर प्यासमयी, एक कल्पनामयी,
एक अनुभूतिमयी धूप-छाँह-सी !
रंग-प्यालियाँ अशेप सूखती ही जाती हैं
तव कहीं छवि पाती जीवन-विचित्रता !
यही अनुराग का, सुहृदता का प्रीति का,
यही है मधुरता का प्रण प्रमेय-सा !
यही देखती है नियत अप्रमेयता।
यही है पहेली—जहाँ जीवन जवास-सा—
सूखता है, वहीं पारिजात खिलता !
कोमल प्रणय का निवेदन ही प्राणों में
सृष्टि कर देता है नवीन एक जग की
भार-सा समेट के धूमिल धरातल का
मन वह जाता है कही अचितय देश में,
जहाँ प्रतिविम्वित न नभ की है शून्यता,
जहाँ प्रतिध्वनित न जगती का रव है !
जहाँ मिल जाती एक अविजित मन्त्रणा,
जहाँ रह जाती मूक-बंधन की दृढ़ता,
वही देश है कि जहाँ कुछ भी अदेय ना
क्योंकि वहाँ देय कुछ भी न रह जाता है !
इस जगती का जो निवासी वह धन्य है !
माना कि घिरे हैं हम उसी ज्ञात ज्ञेय से,
तारिका की क्षुद्रता भी जहाँ ध्रुव-मानिनी,

जहाँ नव शशि की मृदुल रश्मि-राशि ही
देती है तरंग को उमग पहिचानी सी !
जहाँ एक लघु मृदु-मुकुल विहँसती
एक नव जीवन का चित्र खींच देती है !
एक सकुची-सी, बहती-सी लालसा जहाँ
बन बन जाती है अगाधता उदधि की !
प्रति-कण जो अशेष शोभा का विलास ले
प्रति छवि में छिप बैठता है छाँह जैसा,
वही ऋतुओं के अनजान वरदानों में,
देखता है व्यक्त अभिशाप की विवशता !

॥

एक

ऐ अजान परदेसी ! पल भर—
और यहाँ पर रह ले !
पूरी नहीं हुई है,—पल भर—
शेष कहानी कह ले !
मिलना ही है आखिर पल पर—
यह वियोग भी सह ले !
लहर उठी ही है तो पल भर—
इस जीवन में वह ले !
मिलने और बिछुड़ने वाले,
फिर भी भोले-भाले !
यही एक पल है परदेसी !
दुख-सुख सभी मना ले !

दो

मुझे किधर ले आया नाविक !
मेरा पथ न इधर है !
यह अशेष सुषमा-सागर है,
यहाँ लूट का डर है !
जैसी तेरी तरी, हृदय त्योंही—
मेरा जर्जर है !
एक प्रतीक्षा में दोनों हैं,
नाविक ! कूल किधर है ?
हृदय यहाँ भी जिसे न भूला
कैसे उसे भुला दूँ ?
छला गया इस जीवन में—
तो आशा यहीं सुला दूँ ?

तीन

कितना आशा-पूर्ण निराशा—
भरा, किसी का जाना !
रोदन में भी हँसी,
हँसी में भी करुणा का गाना !
उसे गर्व था—'हँस खिल कर—
भी नहीं गया पहिचाना !
उसने काँटों ही में रह कर—
जीवन का सुख माना !'

अब मिलने की चाह हुई है
तुम्हें उसी दीवाने से !
इन बिखरी सूखी पखड़ियों—
के बरबाद खजाने से !

कहाँ खोजता फिरूँ ?

कहाँ खोजता फिरूँ न जानूँ—
मैं उस पथ का छोर !
एक ओर मेरी तृष्णा है
तृप्ति दूसरी ओर !

इस बँधुए की आँखें कैसे—
जायेंगी उस पार ?
यहाँ हँस रही मेरी पीड़ा
वहाँ रो रहा प्यार !

कहाँ पा सकूँगा मैं ? कैसे
अपने जी की शान्ति ?
मेरा ज्ञान यहाँ सोता है
वहाँ जागती भ्रान्ति !

मैं क्या जाऊँ वहाँ ? वहाँ—
का तो है खूब विधान !
जीवन-?—मरण-प्रसाद पा रहा,
मृत्यु ?—अमरता - दान !

मुझसे कहो न ढूँढो-खोजो,
मैं जाऊँगा हार !
मैं मिट जाऊँगा यों हीं
यों हीं मेरा संसार !

मुझे न भेजो उस पथ पर
अकुला जायेंगे प्राण !
यहाँ जागरण की वेला है
और वहाँ निर्वाण !

भले प्रतीक्षा ही में मेरा
खो जाने दो प्यार।
जीत उन्हीं की सही
मुझे ही सह लेने दो हार।

रहने दो प्रस्थान - गीत
रहने दो स्वागत-गान।
फेंक चुका हूँ कोने में—
अरमानों का सामान।

उनका अस्वीकार मुझे है—
सब प्रकार स्वीकार।
मधुऋतु पर न्यौछावर
मेरा पतझर का शृंगार।

|||

इसमें कुछ है !

इस जग में—
इस रवि-शशि-ज्योतित-विहँसित छविमय जग में—
इसमें कुछ है !
यह कोमल-निर्मल शिशु दुलार,
यह नव-नव यौवन-मद-उभार,
यह जरा विशिख तन खिन्नतार,
यह सुख-निधि यह दुख वीचि-भार,
इसमें कुछ है !

इस मग में—
इस शून्य-मौन-सङ्केत धूलिमय मग में—
इसमें कुछ है !
अग-छाया रक्षित अवनि चूम,
रज-कण-सञ्चय-कर पतित सूम,
इस ओर कभी उस ओर घूम,
सुकुमार चरण पा चला झूम !
इसमें कुछ है !

इस वन में—
इस रजत-सुनहले-श्यामल शोभित वन में—
इसमें कुछ है !
यह प्रात-पवन संध्या-समीर,
यह उर्म्मिल सरि-सर अचल-चीर,
मधु-स्वर- चातक- पिक- मोर-कीर,
यह सुमन-हास यह भ्रमर-भीर,
इसमें कुछ है !

इस मन में—

इस पल-पल चञ्चल अविरल गतिमय मन में !——

इसमें कुछ है !

यह मूक रुदन यह स्मित-विलास
यह दूर-दूर यह पास पास,
यह भार-भ्रमित यह शून्य-शून्य
यह सूक्ष्म सूक्ष्म यह विभु-विकास—

इसमें कुछ है !

तुम्हारी याद

१

अरे ! तुम्हारी याद ! सिमिटती लहरों की झाँकी-सी !
मौन प्रस्तरों पर जय पाती युग-युग की आँकी सी !
घन शारदीय माया सी,
कुछ धूप और छाया सी,
या दूर-दूर कूजन करने वाली कोकिल-जाया सी।
यह स्मृति चातक सी प्यासी !

२

आह ! तुम्हारी याद ! भूलते हुए मधुर बचपन-सी !
साँझ भुट पुटी-सी या वारिधि-व्यथित-वीचि-कम्पन सी।
नव वयः संधि-मुग्धा सी,
द्युति दूज-चंद्र-क्षणदा सी,
या एक-एक क्षण—हँसने वाली मृदु-कोमल-कलिका-सी !
यह स्मृति मेरी कविता सी !

३

अरे ! तुम्हारी याद ! झलक-झिलमिल चुप-चुप-चितवन-सी !
नदी-नीर-नव-दीप-दान-सी प्रथम-मिलन के मन-सी !
मति मौन मुग्ध भाषा सी,
जीवन की अभिलाषा सी,
या किसी 'हृदय' की मूक और अन्तिम क्षण की आशा-सी !
यह स्मृति दर्शन की प्यासी !

मैं तुम्हें जगाने आया हूँ—
विहगों की मीठी तानों से ?
न, वह तो है सुख का सपना।
क्या मधुर प्रभाती-गानों से ?
ना, छोड़ो यह सकुमार पना!
मैं वज्र-गँभीर नाद लेकर—
ललकार सुनाने आया हूँ!

मैं तुम्हें मनाने आया हूँ—
आहों से या उच्छ्वासों से ?
ना, वह तो विरही का धन है।
क्या सुख-शृंगार-विलासों से ?
ना, छोड़ो यह कलुषित मन है!
मैं जी की जलती आग लिये—
अरमान जगाने आया हूँ!

मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ—
रस-सुरभित केसर-क्यारी में ?
ना, वह तो उजड़ा सा वन है।
क्या पूरन शशि-उजियारी मे ?
ना, छोड़ो यह पागलपन है।
मैं तीखी एक पुकार लिये—
दिल को तड़पाने आया हूँ!

मैं तुम्हें दिखाने आया हूँ—
नव छवि का—शोभा का वैभव ?
ना, वह तो अब दावानल है।

क्या यौवन में चढ़ता शैशव ?
ना, छोड़ो यह कवि का छल है।
मैं उष्ण रक्त की धार लिये—
उन्माद सिखाने आया हूँ!

मैं तुम्हें हँसाने आया हूँ—
चिर विरह-मिलन की बातों से ?
ना, वह तो कसक-कसाला है।
क्या रस-संकेतों—घातों से ?
ना, छोड़ो यह विष-प्याला है।
मैं नव भावों का साज लिये—
अब हृदय सजाने आया हूँ!

आज विदा की वेला !

आज विदा की वेला !
अब तक कभी न इन आँखों में प्रिय-वियोग था खेला !
आज विछोह मिलेगा—
होगा जी का प्यार अकेला !
अपना जग सूना-सूना-सा
सब दुनियाँ का मेला !
विदा की वेला !

दो-दो मन दौड़ेंगे पाने
एक प्रेम की हेला !
दो-दो हृदय भार तोलेंगे
किसने कितना झेला !
विदा की वेला !

उड़ता उड़ता मान फिरेगा
बहती सी अवहेला !
झाँक-झाँक कर लौट पड़ेगी
सूनी-सूनी वेला !

मेरे पलकों पर—!

मेरे पलकों पर पहुनाई !
वर्तमान हो रहा विगत—जग ने सपने में ली अँगड़ाई !
दीपक की द्युति—क्षीण—किरण ने किसको राह सुझाई !
किसके एक श्वास ने क्षण में—मूक प्रतीति बुझाई ?
मेरे पलकों पर पहुनाई !

यह क्षण जिसने वसु धरा का सब कुछ किया न कुछ-सा !
रंग भूमि का राग बन गया परिचय हीन विसुध-सा !!
कितनी आँखों से देखेगा यह सूना—जगती को ?
कितना कालकूट तम बन कर खा लेगा इस जी को ??
किस पट-परिवर्तन पर ठहरा है यह नेपथ्य अगति-सा ?
किस अविनय का मौनाकर्षण है प्राणों की यति-सा ??
रूप-रँगी अभिलाषाओं पर रीझ पड़ी परछाँई !
मेरे पलकों पर पहुनाई !!

मेरे प्रियतम पाहुन आए !

पथ के सूखे पातों की मर्मर ध्वनि राग लिये थी।
तरु-कंकाल मौन श्वासों में बोले बात हिये की ॥
बूँद-बूँद उड़ चुकी अर्घ्य बन जाने ही की प्यासी।
सरसी की मृण्मयी प्रतीक्षा अब विदीर्ण इच्छा-सी ॥
वे आये हैं, इस सुख का वैवस है भार अकेले।
यही प्रश्न लेकर सूने में विहगी के पर फैले ॥
शिशिर-शीर्ण आतप-से मेरे भाव न क्यों विलगाए।
क्यों इस क्षण का छोर हो रहा उन्मन मरण छिपाए ?
निठुर प्राण नीहार चीर कर किसने पलक उठाए।
मेरे प्रियतम पाहुन आए ॥

२

धूर भरी उस द्वार-देहरी पर अंकित पद-रेखा।
कितनी चतुर सहचरी जिसने सहज पा लिया लेखा ॥
कालिख फैला कर ही मेरा दीप बुझा-बुझ पाया !
जलन बुझाने को सनेह का उसने भार उठाया ॥
ये दर की दीवारें! मिट्टी का भी फटा कलेजा।
टूटी आड़ जिसे मेरी लाचारी ने न सहेजा ॥
इन विथुरे बादल के टुकड़ों पर सुरधनु रंग लाए।
आग भरी बिजली ही मेरी मूक कल्पना पाए ॥
एकाकी वन-पथ का राही क्या मन को समझाये ?
मेरे प्रियतम पाहुन आए ॥

१

कितने गीत और गाये जायेंगे इन प्राणों के स्वर पर ?
कब तक मौन और तड़पेगा इस सूने जीवन के भीतर ?
कितनी आकांक्षायें छिप-छिप कर छाया से छल खेली हैं ?
याचक की अयाचना भी क्या बन जाती है झोली का वर ?
कितनी धूल उड़ी है धुँधली कर देने को ये रेखायें ?
फिर भी क्यों तसवीर किसी की रंगीनी से जाती है भर ?
कितना मोह भरा था जीवन में यह किस क्षण ज्ञात हो सका ?
ललकभरी आँखों ने जब देखा जग को अपना न समझ कर !
कितनी दुर्बलताओं से लिपटी है यह सशक्त मानवता !
उसके मुक्त भाव के साथी बन्धन अनाचार के विषधर !
ज्ञान और दर्शन-जिज्ञासा अमृत-तत्व की सहज कथाएँ—
प्रिय हैं, पर आचरण और जीवन में आया कुछ न उतर कर !
तब कितना सम्मोहन स्वर में, गीतों में कितना संवेदन ?
क्यों अनुभूति शून्यता में ओ 'हृदय' धड़कता है अन्तरतर ?

२

चलो किसी मंज़िल तक पहुँचें वहीं विराम ज़रा सा लेंगे।
हम-तुम दोनों वहीं एक क्षण सन्ध्या की प्रशस्ति गा लेंगे।
इस बेला में जग यह जगती क्रम-क्रम से अन्तर्हित होती।
इस प्रकाश का आराधन कर उसे यहीं फिर भी पा लेंगे।
गोपालों की टेर और हरवाहों का श्रम-गीत वहन कर।
इसी पवन के साथ अचेतन से हम क्यों न कहीं छा लेंगे।
यह देखो पल्लव-सम्पुट में तम में भी तन यों लपेटते—
पंखी के जोड़े से हम-तुम इस जीवन को लिपटा लेंगे

निकट कहीं सरिता-जल में नावों की छप-छप पर उछली-सी—
मधुओं की वाणी के रस में प्राणों का मधु आ ढालेंगे।
प्रहर ढला तिर्यक शशि निशि के अवगुंठन से मद-स्मिति-सा—
झाँकेगा, हम क्षण जीवन-सुख से सूना मन समझा लेंगे।
यह पथ है, हम पाँथ, साधना यही कि हम-तुम ठहर न जायें।
इस अनन्तता में विराम लेकर जीवन में फिर क्या लेंगे?

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	३	तुम्हारी	तुम्हारे
५	२	मधुपान	मधुदान
७	१८	यह है	है यह
६	नाम में	दीप न जगा	दीप ना जगा
६	३	किरण	किरण का
६	४	का न मान	न मान
१७	१	चोर	छोर
१८	३	कब कब	कब तक
१८	१	ये	थे
२६	२	थी	पी
३३	४	मलय वात	मलय-वात
३५	२०	श्रौर	श्रोर
४४	७	की	को
४६	११	लै	ले
४७	३	दृष्टि	सृष्टि
४७	४	घिर मुझ पर	घिर आये मुझ पर
४८	२	हृदम	हृदय
५१	४	प्रवाह कहाँ	प्रवाह कहाँ है
५२	२४	क्यों	क्या
५४	१	मञ्जपी	मञ्जरी
५४	२	पत्र	पात्र
५४	२	अनुपम	अनुपल
५७	१७	क्या कहेगी बात	क्या कहूँ मैं बात
६७	१	ख्यालियों	प्यालियों
८४	७	से	में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४	८	भरे	भरी
८६	८	जब कि अनजान	जब कि एक अनजान
८८	५	उड्न	उडु
८९	१	समीर	समाधि
८९	५	जीवन को मधुतर है	जीवन कोमलतर है
९०	१	निशीच	निशीथ
९०	२	चकित	धक्कित
९२	७	भी	ही
९५	४	वहाँ	कहाँ
९५	१२	मीति	गीति
९५	१३	घर	घट
९५	१४	कह	कहाँ
९५	८	उनको	उसको
९७	६	की	थी
९७	९	चुका	सका
९९	४	प्रतिक्षण का	प्रतिक्षण नव
९९	५	वह	में
१०२	११	अतीत	अगीति
१०२	२१	गीत	गायन
१०२	२४	खिलेंगे	खिले हों
१०३	६	काव्य	व्यक्त
१०३	१०	भरता	देखता
१०३	११	थह	यह
१०३	१२	अतरित	अंतरिक्ष
१०३	२४	भोंकती	झोंकती
१०४	१	विराम	विराग